



2026:AHC-LKO:4615

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या 3886 वर्ष 2024

मेसर्स जेनेबियो हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड,

द्वारा निदेशक, अरुण कुमार श्रीवास्तव

...याचिकाकर्ता

बनाम

पैराडाइम एंटरप्राइजेज

द्वारा निदेशक रितिका पाण्डेय तथा अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता: प्रीतिश कुमार, अमल रस्तोगी

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : सर्वेश कुमार दुबे, ए.एस.जी.आई., अंकित कुमार पांडेय, राज कुमार सिंह

साथ में,

1. अनुच्छेद 227 के तहत मामले संख्या 5145 वर्ष 2024

पैराडाइम एंटरप्राइजेज द्वारा निदेशक रितिका पाण्डेय तथा अन्य

बनाम

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम सुविधा परिषद, लखनऊ, द्वारा, अध्यक्ष एवं 2 अन्य

प्रकाशनार्थ अनुमोदित

08.12.2025 को सुरक्षित

21.01.2026 को पारित

न्यायालय संख्या - 6

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



परिचय:-

1. सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम सुविधा परिषद, लखनऊ (जिसे इसके बाद सुविधा परिषद के रूप में संदर्भित किया गया है) द्वारा पारित दिनांक 27.09.2023 का एक पंचाट याचिकाकर्ता और निजी प्रतिवादी संख्या 1 के बीच कानूनी भंवर में फंसा हुआ है। दोनों प्रतिस्पर्धी पक्ष आमने-सामने हैं। वर्तमान याचिकाकर्ता उक्त पंचाट को निष्पादित कराने के लिए प्रयासरत है, जबकि निजी प्रतिवादी संख्या 1 उक्त पंचाट को सभी संभावित आधारों पर चुनौती देने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा है।

2. उपरोक्त संदर्भ में, याचिकाकर्ता ने याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 दायर की है, जिसमें वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ द्वारा मध्यस्थता वाद संख्या 3 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 17.01.2024 और आदेश दिनांक 20.06.2024 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज कर दिया गया है।

3. प्रारंभिक आपत्तियों के खारिज होने के पश्चात, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा जमा की गई धनराशि को जारी करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ द्वारा उपरोक्त मध्यस्थता वाद संख्या 3 वर्ष 2024 में आदेश दिनांक 27.09.2024 के माध्यम से स्वीकार कर लिया गया है। इस आदेश से व्यथित होकर, निजी प्रतिवादी संख्या 1 ने संबद्ध याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024 के माध्यम से उक्त आदेश को चुनौती देते हुए एक स्वतंत्र याचिका दायर की है।

4. चूंकि इन दोनों याचिकाओं में शामिल मुद्दे समान पक्षों के बीच हैं और एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए दोनों याचिकाओं का निर्णय इस साझा निर्णय (common judgment) द्वारा किया जा रहा है।

5. सुविधा के लिए, मेसर्स जेनेबियो हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड को इसके बाद "याचिकाकर्ता" के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जबकि पैराडाइम एंटरप्राइजेज (जो संबद्ध याचिका के याचिकाकर्ता हैं) को "प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी" के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

तथ्यात्मक मैट्रिक्स

6. आगे की कार्यवाही से पूर्व, वर्तमान याचिका को जन्म देने वाले तथ्यों पर गौर करना उचित होगा। प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता कंपनी के अधिकृत वितरक के रूप में कार्य

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



करते हुए जीईएम पोर्टल पर बोली लगाई थी और वह 20 लाख 'नोवेल कोरोनावायरस सैंपल कलेक्शन किट' की आपूर्ति का आदेश प्राप्त करने में सफल रहा था। उपरोक्त आदेश याचिकाकर्ता को दिया गया था और इसकी आपूर्ति सीधे यू.पी. मेडिकल सप्लाईज कॉरपोरेशन को की गई थी। यद्यपि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को 1,27,12,739/- रुपये का पूरा भुगतान प्राप्त हो गया था, लेकिन इसका भुगतान याचिकाकर्ता को नहीं किया गया। इसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता ने 'सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006' (जिसे इसके बाद 2006 के अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 18 के तहत सुविधा परिषद के समक्ष एक संदर्भ प्रस्तुत किया, जिसने पक्षों को सुनने के पश्चात 27.09.2023 को अपना पंचाट दिया।

7. प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष रिट याचिका संख्या रिट-सी 8511 वर्ष 2023 दायर करके उक्त पंचाट दिनांक 27.09.2023 को चुनौती दी, जिसे दिनांक 17.10.2023 के आदेश द्वारा इस छूट के साथ खारिज कर दिया गया कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके बाद 1996 के अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 34 के अनुसार उचित न्यायालय के समक्ष उक्त पंचाट को चुनौती दे सकता है।

8. इसके पश्चात, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने दिनांक 16.01.2024 को वाणिज्यिक न्यायालय, लखनऊ के समक्ष 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत एक याचिका दायर की, जिसे मध्यस्थता वाद संख्या 3 वर्ष 2024 के रूप में पंजीकृत किया गया।

9. उक्त वाद दिनांक 17.01.2024 को पंजीकृत किया गया और याचिकाकर्ता (जो 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका में प्रतिवादी था) को नोटिस जारी किए गए। वाणिज्यिक न्यायालय, लखनऊ के समक्ष उपस्थित होने के पश्चात, याचिकाकर्ता ने 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका की पोषणीयता के संबंध में मुख्य रूप से दो आधारों पर अपनी प्रारंभिक आपत्तियाँ दर्ज कीं: (i) यह कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने 2006 के अधिनियम की धारा 19 के अनुसार पंचाट राशि का 75% हिस्सा जमा नहीं किया था, अतः धारा 34 के तहत याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता था; (ii) यह कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका स्वयं परिसीमा द्वारा बाधित थी और विलंब क्षमा के लिए किसी भी आवेदन के अभाव में, याचिका को नियमित याचिका के रूप में पंजीकृत नहीं किया जा सकता था, इसलिए धारा 34 के तहत याचिका उपरोक्त आधारों पर खारिज किए जाने योग्य थी।



10. इसी बीच, याचिकाकर्ता ने पंचाट राशि की वसूली के लिए दबाव बनाया और इसके अनुपालन में, वसूली हेतु राज्य अधिकारियों को एक वसूली नोटिस जारी किया गया। प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष एक अन्य रिट याचिका, रिट-सी संख्या 3594 वर्ष 2024 दायर करके उक्त वसूली को चुनौती दी।

11. पक्षों को सुनने के पश्चात, उक्त रिट याचिका को 19.04.2024 को इस टिप्पणी के साथ निस्तारित कर दिया गया कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष पंचाट राशि का 75% हिस्सा जमा करने के लिए तैयार है। न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि उक्त राशि एक सप्ताह के भीतर जमा की जाएगी और यदि यह राशि जमा कर दी जाती है, तो वाणिज्यिक न्यायालय स्थापित कानून के अनुसार याचिका को स्वीकार करेगा और जिला प्रशासन वसूली की कार्यवाही को आगे नहीं बढ़ाएगा। बाद में, आदेश दिनांक 01.05.2024 के माध्यम से, 19.04.2024 के आदेश में प्रदान की गई एक सप्ताह की अवधि को तीन दिन और बढ़ा दिया गया था।

12. खंडपीठ के दिनांक 19.04.2024 के आदेश से लैस होकर, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने 2006 के अधिनियम के तहत पारित पंचाट का 75% हिस्सा जमा करने हेतु एक आवेदन दायर किया और वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक आपत्तियों पर अपनी आपत्तियाँ भी दर्ज कीं। वसूली की कार्यवाही पर रोक लगाने की मांग करते हुए एक अन्य आवेदन भी दायर किया गया।

13. वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ ने पक्षों को सुनने के पश्चात आदेश दिनांक 20.06.2024 के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज कर दिया, जो याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 में चुनौती का विषय है।

14. याचिकाकर्ता ने प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा जमा की गई धनराशि को जारी करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसे शुरुआत में वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा 19.07.2024 को स्वीकार कर लिया गया था। इस आदेश दिनांक 19.07.2024 को प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका संख्या 3611 वर्ष 2024 दायर करके चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निर्णय और आदेश दिनांक 02.08.2024 के माध्यम से उक्त याचिका को स्वीकार करते हुए आदेश दिनांक 19.07.2024 को निरस्त कर दिया और वाणिज्यिक न्यायालय को यह निर्देश दिया कि वह प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा पंचाट पर रोक



लगाने हेतु दिए गए आवेदन और धनराशि जारी करने के आवेदन पर साथ-साथ विचार करे और एक सकारण आदेश के माध्यम से शीघ्रता से उनका निस्तारण करे।

15. रिट याचिका संख्या 3611 वर्ष 2024 में पारित आदेश दिनांक 12.08.2024 के अनुपालन में, वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा मामले पर पुनर्विचार किया गया, जिसने अपने आदेश दिनांक 27.09.2024 के माध्यम से जमा की गई राशि को जारी करने के आवेदन को इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि याचिकाकर्ता एक क्षतिपूर्ति बंधपत्र प्रस्तुत करेगा जिसमें यह उल्लेख होगा कि यदि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका में कोई प्रतिकूल आदेश पारित किया जाता है, तो याचिकाकर्ता जारी की गई उक्त राशि को 6% वार्षिक ब्याज के साथ न्यायालय को वापस कर देगा।

16. जहाँ तक वसूली की कार्यवाही पर रोक लगाने के आवेदन का संबंध है, उक्त आवेदन को भी इस निर्देश के साथ निस्तारित कर दिया गया कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी तीन सप्ताह की अवधि के भीतर पंचाट की शेष 25% राशि की सीमा तक प्रतिभूति प्रस्तुत करे और उपरोक्त के अधीन रहते हुए वसूली की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई।

17. प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने उक्त आदेश दिनांक 27.09.2024 से व्यथित होकर, इसे संबद्ध याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024 में चुनौती दी और यह प्रार्थना की कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को पंचाट राशि के 25% के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने का निर्देश देने वाले आदेश को रद्द किया जाए, साथ ही उसी आदेश के उस दूसरे भाग को भी रद्द किया जाए जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में धनराशि जारी की गई है और इस प्रकार जारी की गई धनराशि को वापस करने का निर्देश दिया जाए।

18. अभिलेख आगे यह दर्शाते हैं कि रिट याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024 में एक समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.11.2024 के माध्यम से यह निर्देशित किया गया था कि उक्त याचिका को याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 के साथ संबद्ध किया जाए। अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि दोनों याचिकाओं पर एक समन्वय पीठ द्वारा सुनवाई की गई और दिनांक 12.11.2024 को निर्णय सुरक्षित रख लिया गया था। हालांकि, निर्णय लिखवाते समय समन्वय पीठ ने पाया कि कुछ स्पष्टीकरणों की आवश्यकता है और मामले को पुनः सुनवाई हेतु सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया। समन्वय पीठ ने दिनांक 19.03.2025 को याचिकाकर्ता को एक हलफनामे की प्रति दाखिल करने का निर्देश दिया था, जिसमें विशेष रूप से उस तिथि का उल्लेख

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



हो जिस दिन उक्त आवेदन दायर किया गया था। इसी बीच, मामला इस न्यायालय के समक्ष रखा गया। इस न्यायालय ने रजिस्ट्रार (लिस्टिंग) से एक रिपोर्ट तलब की थी, जिसे दिनांक 27.10.2025 को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह दर्शाया गया कि मामला अब इस न्यायालय द्वारा संज्ञेय है। इसी पृष्ठभूमि में, इन दोनों याचिकाओं पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने अंततः पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।

पक्षकारों की ओर से दलीलें

19. याचिकाकर्ता की ओर से श्री अमल रस्तोगी द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रीतिश कुमार ने आदेश दिनांक 20.06.2024 (जो याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 में चुनौती के अधीन है) पर प्रहार करते हुए यह तर्क दिया है कि वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2 ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय परिसीमा संबंधी प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज करने में स्वयं को पूरी तरह से गुमराह किया है। यह आग्रह किया गया कि प्रत्यक्षतः सुविधा परिषद द्वारा पारित पंचाट दिनांक 27.09.2023 का था। उक्त पंचाट को 16.01.2024 को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी और 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका दायर करने की समय-सीमा स्वयं धारा 34 (3) में प्रदान की गई है।

20. यह तर्क दिया गया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत एक पंचाट को तीन महीने की अवधि के भीतर चुनौती दी जा सकती है और उसके पश्चात केवल 30 दिनों की अवधि ही वह समय है जिसके लिए विलंब को क्षमा किया जा सकता है। चूंकि पंचाट दिनांक 27.09.2023 का था और प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को यह 06.10.2023 को प्राप्त हुआ था, इसलिए धारा 34 के तहत याचिका तीन महीने के भीतर यानी नवीनतम 06.01.2024 तक दायर की जानी चाहिए थी। यह स्वीकार्य तथ्य है कि याचिका 16.01.2024 को दायर की गई थी, हालांकि, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा विलंब क्षमा की मांग करते हुए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था।

21. विलंब क्षमा की मांग करने वाले किसी भी आवेदन की अनुपस्थिति में, वाणिज्यिक न्यायालय के लिए 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका को समय-सीमा के भीतर मानना संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त, विलंब क्षमा के आवेदन के अभाव में, न्यायालय को विलंब की अनदेखी करने या उसे क्षमा करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। विलंब क्षमा की मांग करते हुए आवेदन प्रस्तुत करना अनिवार्य है और आवेदन की अनुपस्थिति में धारा 34 के तहत

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



याचिका स्वयं दोषपूर्ण थी। उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय ने मामले पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया और न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया यह निष्कर्ष कि आवेदन समय के भीतर था, एक दोषपूर्ण निष्कर्ष है जिसे कायम नहीं रखा जा सकता। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने चिंतल (इंडिया) लिमिटेड बनाम भयाना बिल्डर्स (पी) लिमिटेड; (2021) 4 एससीसी 602 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह आग्रह किया है कि समय-सीमा का मुद्दा मामले की जड़ से जुड़ा हुआ है। जैसे ही याचिकाकर्ता को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका का नोटिस प्राप्त हुआ और वह न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, प्रथम दृष्टया ही प्रारंभिक आपत्तियाँ उठाई गईं। यह तर्क दिया गया कि इस तथ्य के संबंध में पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका तीन महीने की अवधि बीत जाने के बाद दायर की गई थी। यह भी विवादित नहीं है कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका के साथ विलंब क्षमा की मांग करने वाला कोई आवेदन संलग्न नहीं था।

23. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया कि वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित प्रथम आदेश दिनांक 17.01.2024 (जो याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 में चुनौती के अधीन है), जिसके द्वारा याचिका को पंजीकृत किया गया था, वह स्वयं में त्रुटिपूर्ण था। न्यायालय का ध्यान दिनांक 17.01.2024 के आदेश की ओर आकर्षित करते हुए यह कहा गया कि मुंसरिम की रिपोर्ट के अनुसार, 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका पर उचित न्यायालय शुल्क लगाया गया था और यह न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के भीतर थी। इसमें यह भी संज्ञान लिया गया कि याचिका समय-सीमा से बाहर थी, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आलोक में, जिसे (1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका के साथ) अनुलग्नक-7 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया था, यह समय-सीमा से बाहर नहीं थी। उक्त रिपोर्ट पर विचार करते हुए वाद पंजीकृत किया गया और याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए।

24. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का यह संदर्भ और यह निष्कर्ष कि याचिका समय-सीमा के भीतर थी, उच्च न्यायालय के आदेश की पूर्णतः गलत व्याख्या है, क्योंकि उच्च न्यायालय ने न तो विलंब को क्षमा किया था और न ही यह निर्देश दिया था कि याचिका को समय-सीमा के भीतर माना जाए; अतः मामले को



एक नियमित याचिका के रूप में पंजीकृत करना और इसे समय-सीमा के भीतर मानना, अपने आप में ही त्रुटिपूर्ण था।

25. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि यह तथ्य याचिकाकर्ता के संज्ञान में केवल तब आया जब वाणिज्यिक न्यायालय का सम्मन याचिकाकर्ता को तामील किया गया और तत्काल ही प्रारंभिक आपत्तियां उठाई गईं। याचिकाकर्ता ने दोहरी आपत्तियां उठाई थीं: (i) 2006 के अधिनियम की धारा 19 के अनुपालन न होने के संबंध में, जो पंचाट की 75% राशि जमा करना अनिवार्य बनाती है। चूंकि धारा 34 के तहत याचिका के साथ उक्त पूर्व-जमा राशि संलग्न नहीं थी, अतः याचिका विचारणीय नहीं थी; (ii) अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित थी।

26. यह तर्क दिया गया है कि जहाँ तक पंचाट राशि का 75% जमा न करने संबंधी आपत्तियों का प्रश्न है, अब उनका विशेष महत्व नहीं रह गया है क्योंकि इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट-सी संख्या 3594 वर्ष 2024 में पारित आदेश के आलोक में प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा इसकी पूर्ति कर दी गई थी। तथापि, समय-सीमा का मुद्दा अभी भी बना हुआ है, क्योंकि लिखित रूप में इसे न्यायालय के संज्ञान में लाए जाने के बावजूद प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने विलंब क्षमा की मांग करते हुए कोई आवेदन दायर नहीं किया। यहाँ तक कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका में भी विलंब क्षमा हेतु न तो कोई प्रार्थना की गई थी और न ही कोई कथन किया गया था।

27. उल्लेखनीय रूप से, जहाँ याचिकाकर्ता ने अपनी प्रारंभिक आपत्तियाँ लिखित रूप में प्रस्तुत की थीं, जिनका प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा उत्तर भी दिया गया था, फिर भी उसने विलंब क्षमा की मांग करते हुए कोई आवेदन नहीं दिया। ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को नोटिस मिलने के बावजूद विलंब क्षमा हेतु कोई आवेदन नहीं था और जिसके पास अवसर होने पर भी उसने उसका लाभ नहीं उठाया, वहाँ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **चिंतल इंडिया (उपरोक्त)** में प्रतिपादित स्पष्ट आदेश के आलोक में, याचिका समय-सीमा के बाहर थी। इसलिए न तो विलंब को क्षमा किया जा सकता था और न ही याचिका को स्वयं एक नियमित याचिका के रूप में पंजीकृत किया जा सकता था।

28. यह तर्क दिया गया कि न्यायालय ने बिना कोई ठोस कारण बताए, यांत्रिक तरीके से, प्रारंभिक आपत्तियों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि वे विचारणीय नहीं थीं और यह स्पष्ट रूप से



त्रुटिपूर्ण था क्योंकि यह आदेश न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग न करने के दोष से ग्रसित है। इसके अतिरिक्त, यह आदेश मनमाना और कानून के स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है, अतः यह निरस्त किए जाने योग्य है और इसके परिणामस्वरूप, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका समय-सीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है।

29. इसके विपरीत, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वेश दुबे ने यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा समय-सीमा के जिस मुद्दे को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, वह सही नहीं है। यह आग्रह किया गया है कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने इस न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष रिट याचिका संख्या रिट-सी 8511 वर्ष 2023 दायर करके दिनांक 27.09.2023 के पंचाट पर प्रहार किया था। उक्त याचिका को दिनांक 17.10.2023 को निस्तारित कर दिया गया था, जिसमें प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत आपति दायर करने के वैकल्पिक उपचार का लाभ उठाने की अनुमति दी गई थी। दिनांक 16.10.2023 को प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने पहले ही वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष याचिका दायर कर दी थी, जिसे 17.10.2023 को विचारार्थ लिया गया था और खंडपीठ द्वारा पारित आदेश का संज्ञान लेते हुए, याचिका को समय-सीमा के भीतर माना गया था और ऐसी परिस्थितियों में विलंब का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। इसी कारण से वाणिज्यिक न्यायालय ने समय-सीमा से संबंधित प्रारंभिक आपति को विचारणीय न मानकर सही ढंग से खारिज कर दिया है, क्योंकि याचिका स्वयं कानून द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर उचित रूप से दायर की गई थी।

30. श्री दुबे ने आगे यह भी बताया कि प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपतियों पर अपनी आपतियां भी दाखिल की थीं, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि याचिका 16.01.2024 को दायर की गई थी और तथ्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करते हुए विलंब को क्षमा कर दिया गया था। याचिका को स्वीकार कर लिया गया था और किसी भी स्थिति में प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी, आवश्यकता पड़ने पर, परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के लाभ का हकदार था; अतः याचिकाकर्ता का यह तर्क कि याचिका समय-सीमा द्वारा वर्जित थी, सही नहीं था।



31. श्री दुबे ने आगे यह तर्क दिया है कि मामले का एक अन्य पहलू भी है जो विचारणीय है और वह है 'एप्रोबेट और रिप्रोबेट' (एक साथ स्वीकार और इनकार करना) का सिद्धांत। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका में उपस्थित हुआ था और उसने यह तर्क भी दिया था कि 2006 के अधिनियम की धारा 19 के निबंधनों के अनुसार पंचाट राशि का 75% पूर्व-जमा न करने के कारण याचिका विचारणीय नहीं थी। प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने पंचाट की 75% राशि जमा कर दी थी और याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही में इसे अवमुक्त भी करा लिया था। एक बार जब याचिका स्वयं (यदि समय-सीमा द्वारा वर्जित होने के कारण विचारणीय नहीं थी), तो याचिकाकर्ता राशि के 75% जमा करने के लिए जोर नहीं दे सकता था। अब कार्यवाही का विरोध करने, पूर्व-जमा राशि जमा करने पर बल देने और राशि को अवमुक्त कराने के लिए कार्यवाही में भाग लेने के बाद, यह सब इस तथ्य का सूचक है कि याचिकाकर्ता ने अपने स्वयं के आचरण से समय-सीमा के तर्क को त्याग दिया था। इसके अतिरिक्त, अपने आचरण द्वारा याचिकाकर्ता एक साथ स्वीकार और इनकार नहीं कर सकता, इसलिए वाणिज्यिक न्यायालय ने प्रारंभिक आपत्ति को सही ढंग से खारिज कर दिया और याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष समय-सीमा का मुद्दा उठाने का भी हकदार नहीं है, क्योंकि यह भ्रामक है और खारिज किए जाने योग्य है।

32. श्री दुबे ने अपने तर्कों के समर्थन में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा **राकेश कुमार जैन बनाम जुल्फिकार अली; 2023 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2821** में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है। उन्होंने उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय **फरीदाबाद गुड़गांव मिनरल्स बनाम उड़ीसा माइनिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड; एआईआर 2007 उड़ीसा 179** पर भी भरोसा किया है और आगे उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम करुणेश कुमार और अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1705** पर भी भरोसा जताया है।

रिट याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024

33. श्री दुबे ने याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024 पर बल देते हुए यह आग्रह किया है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में राशि अवमुक्त करने का आदेश 2006 के अधिनियम की धारा 19 के अधिदेश के विरुद्ध है। इस तथ्य के बावजूद कि पूर्व में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने रिट याचिका संख्या 3611 वर्ष 2024 में वाणिज्यिक न्यायालय को एक सकारण आदेश पारित करने का निर्देश दिया था, कोई कारण दर्ज नहीं किए गए हैं।



34. यह आगे तर्क दिया गया कि वाणिज्यिक न्यायालय ने इस संबंध में कोई कारण दर्ज नहीं किया कि वे कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने वाणिज्यिक न्यायालय को जमा की गई 75% की संपूर्ण राशि अवमुक्त करने का आदेश पारित करने के लिए प्रेरित किया। वाणिज्यिक न्यायालय के पास प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को पंचाट की शेष 25% राशि के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने का निर्देश देने का कोई औचित्य नहीं था, जिसके अधीन वसूली की कार्यवाही पर रोक लगाई जानी थी, और उक्त निर्देश स्पष्ट रूप से कानून की दृष्टि में त्रुटिपूर्ण था।

35. यह भी तर्क दिया गया कि यहाँ तक कि उच्च न्यायालय ने भी यह संज्ञान लिया था कि पंचाट मान्य नहीं था और उन्होंने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट याचिका-सी संख्या 3594 वर्ष 2024 में पारित दिनांक 19.04.2024 के आदेश के पैरा-17 पर भरोसा किया; अतः किसी भी राशि को अवमुक्त करने या प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी से प्रतिभूति मांगने का कोई कारण नहीं था।

36. श्री दुबे ने आगे यह तर्क दिया कि यदि यह न्यायालय यह पाता है कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर याचिका समय-सीमा द्वारा वर्जित थी, तो इस न्यायालय को अनिवार्य रूप से याचिकाकर्ता को उसके द्वारा प्राप्त राशि वापस करने का उचित निर्देश पारित करना चाहिए, क्योंकि याचिकाकर्ता को किसी आदेश के लाभों को अपने पास रखने और साथ ही उसी आदेश को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में, यह आग्रह किया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका संख्या 3886 वर्ष 2024 खारिज किए जाने योग्य है और याचिका संख्या 5141 वर्ष 2024 स्वीकार किए जाने योग्य है।

37. याचिका संख्या 5451 वर्ष 2024 के संबंध में श्री दुबे के तर्कों का उत्तर देते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रीतिश कुमार ने आग्रह किया कि 2006 का अधिनियम एक विशेष अधिनियम है जो धारा 19 में स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि पूर्व-जमा (pre-deposit) करना अनिवार्य था। एक बार जब राशि जमा कर दी गई, तो न्यायालय उसे अवमुक्त करने में न्यायसंगत था। पक्षों के अधिकारों की रक्षा के लिए, न्यायालय ने याचिकाकर्ता को पहले ही इस शर्त पर रखा था कि वह इस आशय का एक क्षतिपूर्ति बंधपत्र दाखिल करे कि यदि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका में याचिकाकर्ता के प्रतिकूल कोई आदेश पारित किया जाता है, तो याचिकाकर्ता उक्त अवमुक्त राशि को 6% वार्षिक ब्याज के साथ न्यायालय को वापस कर देगा।

38. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि अब यह भली-भांति स्थापित हो चुका है कि धन की डिक्ली पर रोक नहीं लगाई जाती है। वर्तमान परिस्थितियों में जहाँ 2006 का



अधिनियम राज्य के अधिकारियों के माध्यम से वसूली का प्रावधान करता है और जब इसका सहारा लिया गया, तब कार्यवाही पर स्थगन प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी ने स्वयं ही राशि जमा कर दी। उक्त राशि जमा करने के प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी के इरादे का संज्ञान खंडपीठ ने भी रिट-सी संख्या 3594 वर्ष 2024 में पारित अपने दिनांक 19.04.2024 के आदेश में लिया था। उक्त राशि याचिकाकर्ता के लाभ के लिए थी। याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अपेक्षित क्षतिपूर्ति पहले ही प्रस्तुत कर दी है और ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के पक्ष में राशि अवमुक्त करने तथा प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी से शेष 25% के लिए प्रतिभूति मांगने का दिनांक 27.09.2024 का आदेश त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह कानून के अनुरूप है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

39. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे यह आग्रह किया गया कि जो 75% का पूर्व-जमा किया गया है, वह केवल दिनांक 27.09.2023 के पंचाट में दर्शाई गई राशि का 75% है, जबकि 2006 के अधिनियम के अनुसार, 75% के पूर्व-जमा की गणना कुल डिक्री राशि पर की जानी चाहिए, जिसकी गणना 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका दायर करने की तिथि तक के अद्यतन ब्याज के साथ की गई हो। वर्तमान मामले में यह अनुपालन अपर्याप्त था और किसी भी स्थिति में वाणिज्यिक न्यायालय ने अपर्याप्त राशि को अनुपालन के रूप में स्वीकार करके प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को रियायत दी है, जो कानून के अनुसार नहीं है और दी गई परिस्थितियों में, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा दायर याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

चर्चा एवं विश्लेषण

40. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का भी अवलोकन किया है।

41. प्रारंभ में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत शक्ति के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे के संदर्भ में, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 5 का संज्ञान लेना उचित होगा। इस संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय का **भावेन कंस्ट्रक्शन बनाम सरदार सरोवर नर्मदा निगम लिमिटेड; (2022) 1 एससीसी 75** में दिया गया निर्णय मार्गदर्शन प्रदान करता है और सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"18. किसी भी स्थिति में, हमारे कानूनी ढांचे का पदानुक्रम यह अधिदेशित करता है कि

कोई विधायी अधिनियम संवैधानिक अधिकार में कटौती नहीं कर सकता है। निवेदिता शर्मा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



बनाम सी.ओ.ए.आई. [निवेदिता शर्मा बनाम सी.ओ.ए.आई., (2011) 14 एससीसी 337 : (2012) 4 एससीसी (सिविल) 947] में, इस न्यायालय ने कई निर्णयों का उल्लेख किया और यह माना: (एस.सी.सी. पृष्ठ 343, पैरा 11)

11. हमने संबंधित तर्कों/प्रस्तुतियों पर विचार किया है। इस बात में कोई विवाद नहीं हो सकता कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण, उत्प्रेषण, परमादेश, अधिकार-पृच्छा और प्रतिषेध की प्रकृति वाली रिट सहित निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति संविधान की एक मूल विशेषता है और इसे संसदीय कानून द्वारा कम नहीं किया जा सकता है – एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ, (1997) 3 एससीसी 261 : 1997 एससीसी (एल&एस) 577। हालांकि, यह कहना एक बात है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निहित शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय राज्य और/या उसकी एजेंसी/साधन/निकाय या किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा पारित किसी भी आदेश या की गई कार्रवाई, अथवा किसी अर्ध-न्यायिक निकाय/प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध रिट याचिका पर विचार कर सकता है, और यह कहना बिल्कुल अलग बात है कि अनुच्छेद 226 के तहत दायर प्रत्येक याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा सामान्य प्रक्रिया के रूप में विचार किया जाना चाहिए, भले ही व्यथित व्यक्ति के पास एक प्रभावी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध हो। बल्कि, यह स्थापित कानून है कि जब शिकायतों के निवारण के लिए कानून द्वारा एक वैधानिक मंच बनाया गया हो, तो वैधानिक व्यवस्था की अनदेखी करते हुए रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।”

(बल दिया गया)

इसलिए, एक न्यायाधीश के लिए यह विवेकपूर्ण है कि वह अधिनियम के तहत स्थापित प्रक्रिया से परे न्यायिक हस्तक्षेप की अनुमति देने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न करे। इस शक्ति का प्रयोग अत्यंत दुर्लभ अपवादात्मक परिस्थितियों में किया जाना आवश्यक है, जहाँ एक पक्ष को कानून के तहत उपचारहीन छोड़ दिया गया हो या किसी एक पक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से "दुर्भावना" दिखाई गई हो। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित यह उच्च मानक, मध्यस्थता को निष्पक्ष और कुशल बनाने के विधायी इरादे के अनुरूप है।



19. इस संदर्भ में हम दीप इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम ओ.एन.जी.सी. [दीप इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम ओ.एन.जी.सी., (2020) 15 एससीसी 706] का अवलोकन कर सकते हैं, जिसमें मध्यस्थता अधिनियम की धारा 5 और संविधान के अनुच्छेद 227 के बीच अंतर्संबंध का विश्लेषण इस प्रकार किया गया था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 714, पैरा 16-17)

“16. सबसे महत्वपूर्ण धारा 5 में निहित 'नॉन ओब्सटैंट' खंड है, जो यह बताता है कि किसी भी अन्य कानून में कुछ भी होने के बावजूद, मध्यस्थता अधिनियम के भाग। के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में, कोई भी न्यायिक प्राधिकारी तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि इस भाग में ऐसा प्रावधान न हो। धारा 37 कुछ निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध प्रथम अपील का एक संकुचित अधिकार प्रदान करती है और अन्य किसी के विरुद्ध नहीं। इसके अलावा, वैधानिक अधिदेश एक ही बार अपील का अवसर प्रदान करता है, और दूसरी अपील दायर किए जाने को प्रतिबंधित करता है [अधिनियम की धारा 37(2) देखें]।

17. ऐसी स्थिति में, इसमें रती भर भी संदेह नहीं है कि यदि धारा 37 के तहत अपीलों में पारित आदेशों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत याचिकाएं दायर की जाने लगीं, तो संपूर्ण मध्यस्थता प्रक्रिया पटरी से उतर जाएगी और कई वर्षों तक फलीभूत नहीं होगी। साथ ही, हम यह नहीं भूल सकते कि अनुच्छेद 227 एक संवैधानिक प्रावधान है, जो अधिनियम की धारा 5 के 'नॉन ओब्सटैंट' खंड से अछूता रहता है। इन परिस्थितियों में, यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि अधिनियम की धारा 37 के तहत प्रथम अपीलों को स्वीकार या खारिज करने वाले निर्णयों के विरुद्ध अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिकाएं दायर की जा सकती हैं, फिर भी हमारे द्वारा ऊपर वर्णित वैधानिक नीति को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय उनमें हस्तक्षेप करने में अत्यंत सतर्कता बरतेगा, ताकि हस्तक्षेप केवल उन आदेशों तक सीमित रहे जो स्पष्ट रूप से अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभाव में पारित किए गए हों।”

(बल दिया गया)

20. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 1 संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपचार प्राप्त करने के लिए, अपीलकर्ता की ओर से किसी असाधारण परिस्थिति या 'दुर्भावना' को दिखाने में असमर्थ रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 227 का



दायरा व्यापक और सर्वव्यापी है, फिर भी, उच्च न्यायालय को इस स्तर पर मध्यस्थता प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए था। हमारे संज्ञान में यह लाया गया है कि एकमात्र मध्यस्थ के आक्षेपित आदेश के पश्चात, उनके द्वारा गुण-दोष के आधार पर एक अंतिम पंचाट पारित किया गया था, जिसे प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा धारा 34 के एक अलग आवेदन में चुनौती दी गई है, जो कि लंबित है।

21. एक अलग दृष्टिकोण से देखा जाए तो, मध्यस्थता प्रक्रिया कड़ाई से समय-सीमा पर आधारित है और 'अखंडता के सिद्धांत' पर आधारित है। इस न्यायालय ने पी. राधा बाई बनाम पी. अशोक कुमार [पी. राधा बाई बनाम पी. अशोक कुमार, (2019) 13 एससीसी 445 : (2018) 5 एससीसी (सिविल) 773] में टिप्पणी की है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 459, पैरा 36-37)

"36.3. तीसरा, धारा 34(3) 'अखंडता के सिद्धांत' को दर्शाती है। डॉ. पीटर बाइंडर ने 'इंटरनेशनल कमर्शियल आर्बिट्रेशन एंड कंसिलिएशन इन अनसिट्रल मॉडल लॉ जुरिसडिक्शन' (द्वितीय संस्करण) में टिप्पणी की है:

'पंचाट को निरस्त करने हेतु आवेदन केवल उस तारीख के बाद के तीन महीनों के दौरान किया जा सकता है, जिस दिन आवेदन करने वाले पक्ष को पंचाट प्राप्त हुआ हो। केवल तभी, जब किसी पक्ष ने अनुच्छेद 33 के तहत पंचाट के सुधार या व्याख्या के लिए अनुरोध किया हो, तीन महीने की समय-सीमा न्यायाधिकरण द्वारा उस अनुरोध के निस्तारण के बाद शुरू होती है। तीन महीने की समय-सीमा से इस छूट की कार्य समूह में आलोचना की गई थी, क्योंकि यह डर था कि इसका उपयोग विलंबकारी रणनीति के रूप में किया जा सकता है। हालांकि, यद्यपि "निश्चितता और सुगमता" के हित में "पंचाट निरस्त करने के आवेदनों के लिए एक अटूट समय-सीमा" वांछनीय मानी गई थी, फिर भी प्रचलित विचार यह था कि इन शब्दों को बरकरार रखा जाना चाहिए "क्योंकि वे अनुच्छेद 33 के तर्कसंगत परिणाम प्रस्तुत करते थे।" '

समय-सीमा की इस 'अखंडता' के अनुसार और मध्यस्थता पंचाटों की 'निश्चितता और सुगमता' के प्रति निष्ठा रखते हुए, पंचाट को निरस्त करने का ऐसा कोई भी आधार, जो तीन महीने की समय-सीमा समाप्त होने के बाद उत्पन्न होता है, नहीं उठाया जा सकता है।



37. परिसीमा अधिनियम की धारा 17 का विस्तार करना मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34(3) के तहत निहित 'अखंडता' के सिद्धांत के विपरीत होगा।"

(मूल पाठ में बल दिया गया)

यदि न्यायालयों को अधिनियम के दायरे से बाहर मध्यस्थता प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी जाती है, तो प्रक्रिया की दक्षता कम हो जाएगी।

42. हाल के एक निर्णय, श्री दिगंत बनाम मैसर्स पी.डी.टी. ट्रेडिंग कंपनी एवं अन्य; 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 2524 में, जिला न्यायालयों से उत्पन्न होने वाले आदेशों के संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के दायरे पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार संज्ञान लिया है:-

"22. अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का दायरा इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष राधे श्याम बनाम छबी नाथ के मामले में विचारार्थ आया। इस न्यायालय ने यह माना कि दीवानी न्यायालयों के न्यायिक आदेश अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट के दायरे में नहीं आते हैं, हालांकि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार में चुनौती दी जा सकती है। अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का उपयोग संयम से और केवल उपयुक्त मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर रखने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए, न कि केवल साधारण त्रुटियों को सुधारने के लिए। इस शक्ति का प्रयोग गंभीर अन्याय या न्याय की विफलता के मामलों में किया जा सकता है, जैसे कि जब (i) न्यायालय या न्यायाधिकरण ने ऐसा क्षेत्राधिकार ग्रहण कर लिया हो जो उसके पास नहीं है, (ii) वह उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा हो जो उसके पास है, और ऐसी विफलता के कारण न्याय विफल हुआ हो, तथा (iii) क्षेत्राधिकार उपलब्ध होने के बावजूद उसका प्रयोग इस तरह से किया जा रहा हो जो क्षेत्राधिकार की सीमाओं को लांघने के समान हो।"

23. वर्तमान मामले में, अपीलीय न्यायालय ने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया था कि क्या प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा 'कोई निर्देश नहीं' होने का पुरसिस (प्रदर्श 42) प्रस्तुत करने के बाद, प्रतिवादियों को आगे कोई नोटिस दिए बिना मामले की कार्यवाही को आगे बढ़ाने में विचारण न्यायालय न्यायसंगत था। सूक्ष्म विश्लेषण करने और आस-पास

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



की परिस्थितियों को ध्यान में रखने के बाद, अपीलीय न्यायालय ने यह माना कि विचारण न्यायालय ने मामले की कार्यवाही को आगे बढ़ाने में कोई गलती नहीं की। अपीलीय न्यायालय ने यह संज्ञान लिया कि प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने 'कोई निर्देश नहीं' होने का दावा तो किया था, लेकिन अपना वकालतनामा वापस लेने की मांग नहीं की थी और इसके बाद मामला मार्च 2015 में तय होने तक तीन महीने से अधिक समय तक लंबित रहा। इस बीच प्रतिवादियों द्वारा किसी अन्य अधिवक्ता को नियुक्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों ने ऐसा कोई पक्ष प्रस्तुत नहीं किया कि उनके अधिवक्ता का नोटिस उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था, जिसके कारण वे दूसरा अधिवक्ता नियुक्त नहीं कर सके। इसके अलावा, रिकॉर्ड से यह भी संकेत मिला कि प्रतिवादियों का इरादा कार्यवाही में देरी करना था क्योंकि पहले भी उनके विरुद्ध वाद की कार्यवाही एकपक्षीय रूप में आगे बढ़ी थी, हालांकि बाद में उन आदेशों को वापस ले लिया गया था। इसलिए, हमारे विचार में, एक बार जब अपीलीय न्यायालय ने सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार कर लिया, जिसमें यह तथ्य भी शामिल था कि पुरसिस (प्रदर्श 42) में वकालतनामा वापस लेने की मांग नहीं की गई थी और न ही वकालतनामा वापस लेने की अनुमति दी गई थी, तो ऐसा कोई क्षेत्राधिकार संबंधी दोष नहीं था जिसके लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों के प्रयोग की आवश्यकता हो। उच्च न्यायालय ने बिना किसी औचित्य के वकालतनामा वापस लेने के लिए निर्धारित प्रक्रिया पर विचार करना शुरू कर दिया, जबकि न तो विचारण न्यायालय द्वारा वकालतनामा वापस लेने की अनुमति दी गई थी और न ही पुरसिस में उसे वापस लेने की प्रार्थना की गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय की पूरी कवायद गलत थी। विशेष रूप से तब, जब अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि प्रतिवादी अपनी स्वयं की गलती का लाभ नहीं उठा सकता, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों पर आधारित एक उचित दृष्टिकोण था। अतः, हमारे विचार में, अपीलीय न्यायालय का आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप योग्य नहीं था। उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय के एक सुविचारित आदेश में हस्तक्षेप करके संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया है।"

43. उपरोक्त मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय संबंधित पक्षों के तर्कों का परीक्षण करने की ओर अग्रसर होता है। परिसीमा का मुद्दा निश्चित रूप से किसी मामले पर विचार करने

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के लिए, प्रथम दृष्टया, न्यायालय के क्षेत्राधिकार की जड़ तक जाता है। अब यह भली-भांति स्थापित हो चुका है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5, अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाहियों पर लागू नहीं होती है (देखें **भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी; (2001) 8 एससीसी 470**, जिसका अनुसरण सर्वोच्च न्यायालय ने **सिम्प्लेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर बनाम भारत संघ; (2019) 2 एससीसी 455** में किया था, जिसमें पैरा 11 में निम्नानुसार संज्ञान लिया गया था:-

“11. परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5, किसी भी अपील या आवेदन के लिए निर्धारित अवधि के विस्तार से संबंधित है, जो न्यायालय की इस संतुष्टि के अधीन है कि अपीलकर्ता या आवेदक के पास निर्धारित अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 का 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत मध्यस्थता पंचाट को चुनौती देने वाले आवेदन पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। यह इस न्यायालय द्वारा **भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी [भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी, (2001) 8 एससीसी 470]** के अपने निर्णय में तय किया गया है, जिसमें इसने निम्नानुसार व्यवस्था दी थी: (एस.सी.सी. पृष्ठ 474-75, पैरा 12 और 14)”

12. जहाँ तक 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा का संबंध है, महत्वपूर्ण शब्द उप-धारा (3) के परंतुक में प्रयुक्त “परंतु उसके बाद नहीं” हैं। हमारी राय में, यह वाक्यांश परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अर्थ के भीतर एक ‘स्पष्ट अपवर्जन’ के समान होगा, और इसलिए उस अधिनियम की धारा 5 के लागू होने पर रोक लगाएगा। संसद को इससे आगे जाने की आवश्यकता नहीं थी। यह मानना कि न्यायालय परंतुक के तहत विस्तारित अवधि के बाद पंचाट को निरस्त करने के आवेदन पर विचार कर सकता है, “परंतु उसके बाद नहीं” वाक्यांश को पूरी तरह से निरर्थक बना देगा। व्याख्या का कोई भी सिद्धांत इस तरह के परिणाम को उचित नहीं ठहराएगा।

14. यहाँ 1996 के अधिनियम का इतिहास और रूपरेखा इस निष्कर्ष का समर्थन करते हैं कि पंचाट को चुनौती देने के लिए धारा 34 के तहत निर्धारित समय-सीमा पूर्ण है और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत न्यायालय द्वारा विस्तार योग्य नहीं है।”



44. वर्तमान मामले में परिसीमा के मुद्दे से संबंधित तथ्य पक्षों के बीच विवादित नहीं हैं। यह निर्विवाद है कि प्रतिवादी ने सुगमता परिषद द्वारा पारित पंचाट को रिट-सी संख्या 8511/2023 दायर करके चुनौती दी थी। इस न्यायालय की खंडपीठ ने 05.10.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किया था, जो इस प्रकार है:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री एस.बी. पांडे, विद्वान डी.एस.जी.आई./वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्हें प्रतिवादी संख्या 1 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. सिंह द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना गया।

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता प्रार्थना करते हैं और उन्हें पंचाट की स्थिति के संबंध में अपने निर्देश प्राप्त करने के लिए तीन दिन का समय दिया जाता है।

इस मामले को 10.10.2023 को सूचीबद्ध करें।"

45. इसके पश्चात दिनांक 17.10.2023 को उक्त याचिका में खंडपीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"मामला को पुनः पुकारा गया।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं हैं। प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से श्री राजेश तिवारी, अधिवक्ता उपस्थित हैं तथा प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से श्री एस.बी. पांडे, विद्वान ए.एस.जी.आई., जिन्हें श्री आर.के. सिंह, अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई, उपस्थित हैं।

प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ताओं का कथन है कि दिनांक 27.09.2023 को पंचाट (award) पारित किया जा चुका है और उसके विरुद्ध याचिकाकर्ताओं के पास उचित न्यायालय के समक्ष धारा 34 के तहत आपति दाखिल करने का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है।

उपरोक्त स्वतंत्रता के साथ, याचिका अभिलेखागार को प्रेषित की जाती है।"

46. उपरोक्त उद्धृत दिनांक 17.10.2023 के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि (यहाँ के) प्रतिवादी के अधिवक्ता न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं थे। हालांकि, इस तथ्य को संज्ञान में लेते हुए कि प्रतिवादी के पास अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आपति दाखिल करने



का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध था, न्यायालय ने याचिका पर विचार करना उचित नहीं समझा और उपरोक्त स्वतंत्रता प्रदान करने के बाद, याचिका को अभिलेखागार को प्रेषित कर दिया।

47. रिकॉर्ड से आगे यह संकेत मिलता है कि प्रतिवादी ने 16.01.2024 को वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत याचिका दायर की थी। संबंधित न्यायालय द्वारा इस पर 17.01.2024 को सुनवाई की गई। वाणिज्यिक न्यायालय ने 17.01.2024 को एक आदेश पारित किया था, जो इस याचिका में चुनौतीपूर्ण है, और इसे इसके बाद पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

"प्रार्थी/वादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रार्थनापत्र ए-3 माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा-34 के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

सुना तथा मुंसरिम आख्या का अवलोकन किया। मुंसरिम आख्यानुसार वाद सुनवाई का अधिकार अन्तर्गत न्यायालय है। पर्याप्त न्यायशुल्क लगा है। प्रार्थनापत्र कालबाधित है, परन्तु माननीय उच्च न्यायालय के आदेश एनेक्चर-7 जो प्रार्थनापत्र के साथ संलग्न है, के आधार पर कालबाधित नहीं है।

प्रस्तुत वाद आर्बीट्रेशन वाद के रूप में पंजीकृत हो। पत्रावली लंच बाद पेश हो।"

"दिनांक- 17.01.2024

पत्रावली कम्प्यूटर द्वारा कमर्शियल कोर्ट नं० 2 में प्रेषित की जाती है।"

"दिनांक- 17.01.2024

पत्रावली कम्प्यूटर द्वारा रैनडम में कमर्शियल कोर्ट नं० 1 से प्राप्त हुई। दर्ज रजिस्टर हो।"

"दिनांक- 17.01.2024

पत्रावली लंच बाद पेश हुई। वादी अधिवक्ता उपस्थित। प्रतिवादी अनुपस्थित। प्रार्थना-पत्र 6-ग पर वादी के विद्वान अधिवक्ता को सुना। वादी द्वारा प्रार्थना पत्र 6-ग अंतर्गत धारा 34, उपधारा 2 व 3, मध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 वास्ते निषेधाज्ञा दिया गया है। मेरे मत से इस पत्रावली में प्रार्थना पत्र 6-ग पर आदेश पारित करने से पूर्व विपक्षी को भी सुना जाना आवश्यक व समीचीन है।



आदेश

विपक्षी को उभय प्रकार से नोटिस जारी हो। वादी इस संदर्भ में आवश्यक पैरवी अंदर सप्ताह करे। पत्रावली वास्ते सुनवाई दिनांक- 12.02.2024 को पेश हो।"

48. एक अन्य तथ्य जिसे इस स्तर पर देखे जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में प्रतिवादी को कोई ऐसी रियायत प्रदान की थी, जिसके द्वारा उस याचिका को समय-सीमा के भीतर माना जा सकता था, जो अन्यथा परिसीमा द्वारा बाधित थी।

49. इस पहलू का परीक्षण करने के लिए, प्रतिवादी द्वारा अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत दायर याचिका के पैराग्राफ 45 से 48 की विषय-वस्तु को त्वरित संदर्भ हेतु नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

45. यह कि याचिकाकर्ता ने लखनऊ पीठ के उच्च न्यायालय में दिनांक 27.09.2023 को एक रिट याचिका संख्या (रिट-सी संख्या 8511/2023) भी दायर की थी, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि मध्यस्थ, एम.एस.एम.ई. सुगमता परिषद, लखनऊ को निर्देश जारी किए जाएं कि वे सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 द्वारा अनिवार्य किए गए मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के अनुसार ही मामले में कार्यवाही को आगे बढ़ाएं।

46. यह कि यह संज्ञान लिया जाना आवश्यक है कि मध्यस्थ, एम.एस.एम.ई. सुगमता परिषद, लखनऊ ने उसी दिन यानी दिनांक 27.09.2023 को एक मध्यस्थता पंचाट पारित कर दिया, जिस दिन याचिकाकर्ता ने लखनऊ पीठ के उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की थी।

47. यह कि उपरोक्त रिट याचिका की कार्यवाही के दौरान, प्रतिवादी के अधिवक्ता ने एक प्रति-शपथ पत्र दाखिल किया और माननीय उच्च न्यायालय को मध्यस्थ, एम.एस.एम.ई. सुगमता परिषद, लखनऊ द्वारा दिनांक 27.09.2023 को पारित मध्यस्थता पंचाट के बारे में सूचित किया।

48. यह कि माननीय उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ ने दिनांक 17.10.2023 को उपरोक्त रिट याचिका को इस निर्देश के साथ खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता उचित न्यायालय के समक्ष मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत एक अलग



याचिका दायर करे। दिनांक 17.10.2023 के आदेश की छायाप्रति इस याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न है।

50. उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अनुलग्नक संख्या 7, जिसका संदर्भ वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अपने दिनांक 17.01.2024 के आदेश में दिया गया है, वही आदेश है जो इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट-सी संख्या 8511/2023 में पारित किया गया था। उक्त आदेश को पहले ही ऊपर पुनरुत्पादित किया जा चुका है और इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि न्यायालय ने प्रतिवादी को वैकल्पिक उपचार का सहारा लेने की अनुमति देने के अलावा, कोई अन्य स्वतंत्रता या ऐसी कोई रियायत प्रदान नहीं की थी जिससे याचिका की योग्यता या अक्षमता पर कोई प्रभाव पड़े। खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से ऐसी कोई टिप्पणी नहीं की जिसे इस रूप में समझा जा सके कि विलंब, यदि कोई हो, तो उसे क्षमा कर दिया जाएगा या उस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा, जब भी प्रतिवादी अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आपति दाखिल करने के वैकल्पिक उपचार का सहारा लेने का विकल्प चुनता है।

51. इस पृष्ठभूमि में, वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अपने दिनांक 17.01.2024 के आदेश में की गई यह टिप्पणी कि यद्यपि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत याचिका परिसीमा द्वारा बाधित थी, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश (आदेश जो अनुलग्नक संख्या 7 था) के कारण याचिका समय-बाधित नहीं थी, प्रत्यक्षतः उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को गलत तरीके से पढ़ने और उसका गलत अर्थ निकालने का एक स्पष्ट मामला है।

52. समन प्राप्त होने पर याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर दिनांक 12.02.2024 को अपनी प्रारंभिक आपतियाँ दर्ज कीं, जिसमें दो आधारों पर पोषणीयता का मुद्दा उठाया गया: (i) अधिनियम 2006 की धारा 19 के अनुपालन न होने के कारण धारा 34 के तहत याचिका दोषपूर्ण थी क्योंकि इसके साथ डिक्री की राशि का 75% पूर्व-जमा संलग्न नहीं था, (ii) अधिनियम 1996 की धारा 34 (3) के निबंधनों के अनुसार याचिका परिसीमा द्वारा बाधित थी।

53. अपने उत्तर में, जहाँ तक परिसीमा के मुद्दे का संबंध है, प्रतिवादी ने पैराग्राफ 12 और 13 में अपना पक्ष इस प्रकार रखा:-

"12. यह कि अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता इस माननीय न्यायालय को सूचित करना चाहता है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत वर्तमान मामले को दायर करने में कोई विलंब नहीं हुआ है, याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता ने इस माननीय न्यायालय

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के समक्ष दिनांक 16.01.2024 को वर्तमान मामला दायर किया था और सभी प्रतिवादियों को उपरोक्त मामले की प्रति स्पीड पोस्ट के माध्यम से भेजने में एक दिन का समय व्यतीत हुआ है।

13. यह कि आगे, इस माननीय न्यायालय ने तथ्यों और साक्ष्यों को देखने के पश्चात, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत वर्तमान मामले को दायर करने में हुए 1 दिन के विलंब को दिनांक 12.02.2024 को पहले ही क्षमा कर दिया है। इसके अतिरिक्त, याचिका को पहले ही विचारण के लिए स्वीकार किया जा चुका है और यदि आवश्यक हुआ, तो याचिकाकर्ता को परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ दिया जाएगा। अतः, यह कहना कि वर्तमान मामले में विलंब हुआ है, गलत है और इसका पुरजोर खंडन किया जाता है।"

54. इस स्तर पर, प्रतिवादी द्वारा अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत अपनी याचिका में की गई प्रार्थना पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

"अतएव, उपरोक्त वर्णित तथ्यों, कारणों, विधि, दिशानिर्देशों, परिपत्रों, शासनादेशों, आधारों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता इस माननीय न्यायालय के समक्ष अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना करता है कि:-

(i) उपरोक्त वर्णित तथ्यों, कारणों, परिस्थितियों और आधारों के आलोक में, इस माननीय न्यायालय से अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना है कि मध्यस्थ, सुगमता परिषद, लखनऊ द्वारा दिनांक 27.09.2023 को पारित आदेश को रद्द या निरस्त किया जाए, क्योंकि याचिकाकर्ता को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं मिला और मध्यस्थ ने एकपक्षीय पंचाट पारित कर दिया।

(ii) इस माननीय न्यायालय से यह भी अनुरोध है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36(2) और (3) के अनुसार उक्त मध्यस्थता पंचाट के प्रवर्तन पर रोक लगाने की कृपा करें।

(iii) न्याय के हित में मामले की उपरोक्त विस्तृत परिस्थितियों में जो भी अन्य राहत यह माननीय न्यायालय उचित और उपयुक्त समझे, उसे प्रदान करने की कृपा करें।"



55. उपरोक्त अभिवचनों और प्रत्युत्तर पर संज्ञान लेने का संपूर्ण उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रतिवादी ने अपने मामले की कल्पना किस प्रकार की थी। प्रतिवादी का पक्ष यह था कि याचिका समय-सीमा के भीतर थी। यदि विलंब हुआ भी था, तो उसे न्यायालय द्वारा क्षमा कर दिया गया था और किसी भी स्थिति में, चूंकि प्रतिवादी ने दिनांक 27.09.2023 के पंचाट को चुनौती देते हुए रिट-सी संख्या 8511/2023 दायर की थी, इसलिए प्रतिवादी परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के लाभ का हकदार था। इस प्रकार, वाणिज्यिक न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए परिसीमा के मुद्दे से संबंधित प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करने में कोई त्रुटि नहीं की।

56. इस संबंध में, यह न्यायालय स्थापित व्यवस्था का संज्ञान लेता है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5, अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाहियों पर लागू नहीं होती है, जबकि अधिनियम 1963 की धारा 14 लागू होती है। दोनों धाराओं में अंतर और मध्यस्थता कार्यवाहियों में उनकी पूर्वोक्त प्रयोज्यता को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कंसोलिडेटेड इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज बनाम प्रमुख सचिव, सिंचाई विभाग एवं अन्य; (2008) 7 एससीसी 169** में संज्ञान में लिया गया था और इसका प्रासंगिक अंश नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

"20. परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करती है कि जहां कोई विशेष या स्थानीय कानून किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए अनुसूची द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि से भिन्न परिसीमा अवधि निर्धारित करता है, वहां धारा 3 के प्रावधान इस प्रकार लागू होंगे मानो ऐसी अवधि अनुसूची द्वारा निर्धारित अवधि हो और किसी विशेष या स्थानीय कानून द्वारा किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए निर्धारित किसी परिसीमा अवधि के निर्धारण के उद्देश्य के लिए, धारा 4 से 24 में निहित प्रावधान केवल तभी और उसी सीमा तक लागू होंगे, जहां तक कि वे ऐसे विशेष या स्थानीय कानून द्वारा स्पष्ट रूप से अपवर्जित न किए गए हों। जब कोई विशेष कानून एक निश्चित परिसीमा अवधि के साथ-साथ पर्याप्त कारण दिखाए जाने पर निर्दिष्ट समय-सीमा तक विस्तार का प्रावधान करता है, तो विशेष कानून के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि प्रभावी होगी और उस सीमा तक परिसीमा अधिनियम के प्रावधान अपवर्जित रहेंगे। चूंकि अधिनियम की धारा 34 की उप-धारा (3) को अधिनियमित करने में विधायिका का आशय यह है कि पंचाट को रद्द करने का आवेदन तीन महीने के भीतर किया जाना चाहिए और पर्याप्त कारण दिखाए जाने पर इस अवधि को 30 दिनों की एक और अवधि के लिए बढ़ाया जा

सकता है, लेकिन उसके बाद नहीं, अतः इस न्यायालय का यह मत है कि परिसीमा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के प्रावधानों के कारण परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की प्रयोज्यता अपवर्जित (exclude) हो जाती है। हालाँकि, केवल इसलिए कि यह माना गया है कि पंचाट को रद्द करने के लिए अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर आवेदन पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है, किसी को यह निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता नहीं है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान भी अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर लागू नहीं होंगे।

21. परिसीमा अधिनियम की धारा 14 बिना क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में सद्भावी (bona fide) कार्यवाही में लगे समय के अपवर्जन से संबंधित है। उक्त धारा के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 14 का लाभ लेने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

- (1) पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती, दोनों कार्यवाहियाँ एक ही पक्षकार द्वारा संचालित सिविल कार्यवाहियाँ हों;
- (2) पूर्ववर्ती कार्यवाही उचित तत्परता और सद्भाव के साथ संचालित की गई थी;
- (3) पूर्ववर्ती कार्यवाही की विफलता क्षेत्राधिकार की त्रुटि या इसी तरह के अन्य कारणों से हुई थी;
- (4) पूर्ववर्ती कार्यवाही और बाद की कार्यवाही एक ही विवाद विषय से संबंधित होनी चाहिए; तथा
- (5) दोनों कार्यवाहियाँ न्यायालय में होनी चाहिए।

22. इस धारा की नीति किसी मुकदमेबाज को परिसीमा की बाधा के विरुद्ध तब संरक्षण प्रदान करना है, जब वह कोई ऐसी कार्यवाही शुरू करता है जो किसी तकनीकी त्रुटि के कारण मेरिट पर तय नहीं हो पाती और खारिज कर दी जाती है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों पर विचार करते समय, उचित दृष्टिकोण अपनाना होगा और प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार करनी होगी जिससे कार्यवाही को विफल करने के बजाय न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके। यह ध्यान में रखना उचित होगा कि धारा 14 के आह्वान में 'गलती' का तत्व अंतर्निहित है। वास्तव में, इस धारा का उद्देश्य गलत उपचार या



गलत मंच के चयन के मामलों में परिसीमा की बाधा के विरुद्ध राहत प्रदान करना है। अधिनियम की धारा 14 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधायिका ने उक्त धारा को एक सद्भावी मुकदमेबाजी की गतिविधि में लगने वाली एक निश्चित अवधि को छूट देने के लिए अधिनियमित किया है। धारा में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर, इस व्याख्या को कायम रखना संभव नहीं है कि उक्त धारा के अंतर्निहित सिद्धांत—अर्थात्, परिसीमा की बाधा उस व्यक्ति को प्रभावित नहीं करनी चाहिए जो अपने मामले की मेरिट पर सुनवाई के लिए ईमानदारी से अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर रहा है, लेकिन न्यायालय द्वारा ऐसी सुनवाई करने में असमर्थ होने के कारण विफल रहता है—अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत दायर आवेदन पर लागू नहीं होगा। यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से न केवल उस मामले में लागू होता है जिसमें एक मुकदमेबाज अपना आवेदन उस न्यायालय में लाता है जिसके पास उसे सुनने का क्षेत्राधिकार नहीं है, बल्कि वहां भी लागू होता है जहां वह कानून की सद्भावी भूल (bona fide mistake of law) या प्रक्रिया की त्रुटि के परिणामस्वरूप गलत न्यायालय में वाद या आवेदन प्रस्तुत करता है। विधायिका के आशय को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुदृढ़ मत है कि धारा 14 के अंतर्निहित साम्य को पूरी सीमा तक लागू किया जाना चाहिए और गलत न्यायालय में तत्परता से उपचार पाने में लगने वाले समय को अपवर्जित किया जाना चाहिए।

23. इस स्तर पर यह सुनिश्चित करना प्रासंगिक होगा कि क्या अधिनियम 1996 में कोई ऐसा स्पष्ट प्रावधान है, जो परिसीमा अधिनियम की धारा 14 की प्रयोज्यता को अपवर्जित करता हो। अधिनियम 1996 के प्रावधानों की समीक्षा करने पर यह न्यायालय पाता है कि उक्त अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो उक्त अधिनियम की धारा 34 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों की प्रयोज्यता को अपवर्जित करता हो। इसके विपरीत, यह न्यायालय पाता है कि धारा 43, परिसीमा अधिनियम 1963 के प्रावधानों को मध्यस्थता कार्यवाहियों पर लागू करती है। धारा 34 के तहत कार्यवाहियाँ पंचाट को चुनौती देने के प्रयोजन के लिए हैं, जबकि धारा 43 के तहत संदर्भित कार्यवाहियाँ मूल कार्यवाहियाँ हैं जिन्हें न्यायालय में वाद के समान माना जा सकता है। अतः, परिसीमा अधिनियम को समाहित करने वाली धारा 43 मध्यस्थता की कार्यवाहियों पर उसी प्रकार लागू होगी जैसे यह न्यायालय में वाद की कार्यवाहियों पर लागू होती है।

अधिनियम की धारा 43 की उप-धारा (4), अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान करती



है कि जहां न्यायालय यह आदेश देता है कि मध्यस्थता पंचाट को रद्द कर दिया जाए, तो मध्यस्थता शुरू होने और न्यायालय के आदेश की तारीख के बीच की अवधि को, प्रस्तुत विवाद के संबंध में कार्यवाही शुरू करने के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा निर्धारित समय की गणना में अपवर्जित किया जाएगा। यदि मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने से लेकर न्यायालय द्वारा पंचाट रद्द किए जाने तक की अवधि को विवाद के संबंध में किसी भी कार्यवाही के लिए निर्धारित परिसीमा अवधि की गणना में अपवर्जित किया जाना है, तो ऐसा न मानने का कोई उचित कारण नहीं है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर लागू होंगे, विशेष रूप से तब जब अधिनियम 1996 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिलता है, जो अधिनियम की धारा 34 के तहत किए गए आवेदन पर परिसीमा अधिनियम की धारा 14 की प्रयोज्यता को अपवर्जित करता हो। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 34 के तहत शक्तियों का प्रयोग न्यायालय द्वारा केवल तभी किया जा सकता है जब व्यथित पक्षकार आवेदन करता है। धारा 34 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग स्वतः संज्ञान लेकर नहीं किया जा सकता है। मध्यस्थता पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन करने हेतु चार महीने की कुल अवधि असामान्य रूप से लंबी नहीं है। यदि यह माना जाए कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान अधिनियम 1996 की धारा 34 पर लागू नहीं होते हैं, तो यह अनुचित रूप से दमनकारी होगा, क्योंकि निस्संदेह ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है जहाँ एक व्यथित पक्षकार, उचित तत्परता और सद्भाव बरतने के बावजूद, चार महीने की अवधि के भीतर आवेदन करने में असमर्थ रहता है। अधिनियम 1996 की धारा 34 की योजना और भाषा से, परिसीमा अधिनियम की धारा 14 की प्रयोज्यता को अपवर्जित करने का विधायी आशय स्पष्ट नहीं होता है। यह याद रखना उचित है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 परिसीमा की कोई नई अवधि प्रदान नहीं करती है, बल्कि केवल एक निश्चित अवधि के अपवर्जन का प्रावधान करती है। विधायी आशय को ध्यान में रखते हुए, यह मानना होगा कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के प्रावधान, मध्यस्थता पंचाट को रद्द करने के लिए अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर लागू होंगे।



28. इसके अतिरिक्त, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत प्रयुक्त किए जाने वाले विवेकाधिकार और उक्त अधिनियम की धारा 14 में प्रदान किए गए समय के अपवर्जन (exclusion) के बीच एक मौलिक अंतर है। धारा 5 के तहत विलंब को क्षमा करने और समय विस्तार देने की शक्ति विवेकाधीन है, जबकि धारा 14 के तहत, यदि आवश्यक शर्तें पूरी होती हैं, तो समय का अपवर्जन अनिवार्य है। धारा 5 अपने प्रभाव में धारा 14 की तुलना में अधिक व्यापक है, इस अर्थ में कि यह दिखाने के लिए कई व्यापक और भिन्न कारण प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि अपील या आवेदन समय पर दायर न करने के पीछे पर्याप्त कारण मौजूद था। धारा 5 और धारा 14 के संबंध में आवश्यक घटक भिन्न हैं। धारा 14 का प्रभाव यह है कि "निर्धारित अवधि" की समाप्ति की तिथि सुनिश्चित करने के लिए, परिसीमा के रूप में प्रभावी होने से अपवर्जित किए गए दिनों को उस अवधि में जोड़ा जाना चाहिए जो प्राथमिक रूप से निर्धारित परिसीमा अवधि है। इन सभी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यह मानना कठिन है कि पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी [(2001) 8 एससीसी 470] के निर्णय में यह व्यवस्था दी गई है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान, अधिनियम की धारा 34 के तहत पंचाट को चुनौती देने वाले आवेदन पर लागू नहीं होंगे।"

57. परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ प्राप्त करने के लिए, संबंधित न्यायालय (जो इस मुद्दे पर विचार कर रहा था कि धारा 14 का लाभ दिया जाना चाहिए या नहीं) के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि निम्नलिखित शर्तें पूरी हुई हैं या नहीं:

- (1) पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती, दोनों कार्यवाहियाँ एक ही पक्षकार द्वारा संचालित सिविल कार्यवाहियाँ हों;
- (2) पूर्ववर्ती कार्यवाही उचित तत्परता और सद्भाव के साथ संचालित की गई थी;
- (3) पूर्ववर्ती कार्यवाही की विफलता क्षेत्राधिकार की त्रुटि या इसी तरह के अन्य कारणों से हुई थी;
- (4) पूर्ववर्ती कार्यवाही और बाद की कार्यवाही एक ही विवाद विषय से संबंधित होनी चाहिए; तथा
- (5) दोनों कार्यवाहियाँ न्यायालय में हों।



58. अब यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या उपरोक्त वर्णित शर्तें लागू थीं, न्यायालय अनिवार्य रूप से अपने समक्ष संबंधित पक्षों द्वारा किए गए अभिवचनों को देखने के लिए बाध्य था। यहाँ तक कि विलंब क्षमा करने के प्रयोजन के लिए भी, न्यायालय से रियायत चाहने वाले पक्ष को यह अभिवचन देना और प्रदर्शित करना होगा कि वह निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर न्यायालय के समक्ष याचिका/अपील/आवेदन दायर करने से किसी 'पर्याप्त कारण' से बाधित था। इस प्रकार, चाहे कोई पक्ष परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के लाभ का दावा करे या धारा 14 का, इस संबंध में अभिवचन अत्यंत महत्व रखते हैं।

59. प्रस्तुत मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत दायर याचिका पंचाट की तारीख से तीन महीने की अवधि के बाद थी, लेकिन यह उसके बाद के 30 दिनों के भीतर दायर की गई थी। अतिरिक्त 30 दिनों की यह अवधि इस कारण से महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय के पास इस अतिरिक्त 30 दिनों के विलंब को क्षमा करने की शक्ति है, जो अधिनियम 1996 की धारा 34(3) के अनुसार है न कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अनुसार।

60. इस संदर्भ में, यदि कोई विलंब होता है, जो कि पूर्वोक्त 30 दिनों की क्षम्य अवधि के भीतर है, तो उसे स्पष्ट किया जाना आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि विलंब होने के बावजूद और विलंब क्षमा करने हेतु न तो कोई आवेदन दिए जाने और न ही इस संबंध में कोई प्रार्थना किए जाने पर भी, न्यायालय स्वतः ही विलंब को क्षमा करने का हकदार हो जाएगा; और न ही न्यायालय केवल इसलिए विलंब को क्षमा करेगा क्योंकि यह अधिनियम 1996 की धारा 34(3) के अनुसार 30 दिनों की क्षम्य अवधि के भीतर है, चाहे विलंब क्षमा करने की मांग करने वाले पक्ष द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण क्यों न दिया गया हो।

61. न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह यह सुनिश्चित करे कि विलंब से न्यायालय में आने के लिए दिखाया गया आधार—जो निश्चित रूप से क्षम्य अवधि के भीतर है—क्या 'पर्याप्त कारण' की श्रेणी में आता है। एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि न्यायालय में आने में हुआ विलंब अधिनियम 1996 की धारा 34(3) के तहत निर्धारित तीन महीने के बाद लेकिन 30 दिनों की क्षम्य अवधि के भीतर है, और दिया गया स्पष्टीकरण 'पर्याप्त कारण' बनाता है, तो विलंब को क्षमा किया जा सकता है। इसका अनिवार्य रूप से अर्थ है दिखाए गए कारण पर न्यायिक



मस्तिष्क का प्रयोग करना, विरोधी पक्ष के तर्क पर विचार करना और अपने निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए कारणों को आधार बनाना।

62. अब, यदि कोई पक्षकार परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के लाभ की मांग कर रहा है, तो ऐसे मामले में न्यायालय के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अभिवचनों के आधार पर यह परीक्षण करे कि क्या धारा 14 का लाभ देने के लिए शर्तें विद्यमान हैं, और फिर उसे दिए गए मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, न्यायालय को अपना यह संतोष दर्ज करना होगा कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के लाभ का दावा करने वाले पक्षकार द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों ने अपना मामला सिद्ध कर दिया है और केवल तभी धारा 14 का लाभ दिया जा सकता है।

63. इस स्तर पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा **चिंतल इंडिया (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय पर विचार करना उचित होगा, जिसे याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अपने तर्कों का मुख्य आधार बनाया गया है। **चिंतल इंडिया (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा था कि क्या अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आवेदन दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने से इनकार करने वाला न्यायालय का आदेश, अधिनियम की धारा 37(1)(सी) के तहत एक अपील योग्य आदेश है। इसी संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने कई निर्णयों पर विचार किया और "प्रभाव सिद्धांत" की सहायता लेते हुए यह व्यवस्था दी कि विलंब को क्षमा करने से इनकार करने का 'प्रभाव' यह होता है कि न्यायालय पंचाट को रद्द करने से इनकार कर देता है, जो अधिनियम 1996 की धारा 37(1)(सी) के अनुसार अपील योग्य है और ऐसी अपील विचारणीय होगी।

64. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उच्चतम न्यायालय ऐसी स्थिति पर विचार नहीं कर रहा था कि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत याचिका की विषय-वस्तु क्या होनी चाहिए या उक्त याचिका का अर्थ किस प्रकार निकाला जाना चाहिए। यह भी समान रूप से स्थापित है कि किसी निर्णय की व्याख्या 'यूक्लिड प्रमेय' की तरह नहीं की जानी चाहिए और किसी निर्णय के संदर्भ से हटकर की गई टिप्पणी को किसी मुद्दे का निर्णायक निष्कर्ष नहीं माना जा सकता। इसी संबंध में, **चिंतल इंडिया (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियाँ, विशेष रूप से पैराग्राफ 11, स्पष्टता के लिए नीचे पुनरुत्पादित की जा रही हैं:—

"8. धारा 34(1) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचाट को रद्द करने के लिए दिया गया आवेदन उप-धारा (2) और (3) दोनों के अनुरूप होना चाहिए। इसका अर्थ यह होगा कि ऐसे आवेदन को न केवल उप-धारा (3) द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर होना



चाहिए, बल्कि उसमें पंचाट को रद्द करने के लिए उप-धारा (2) और/या (2ए) के तहत आधार भी बताने होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आवेदन स्वयं समय के भीतर होना चाहिए, और यदि वह तीन महीने की अवधि के भीतर नहीं है, तो उसके साथ विलंब क्षमा के लिए एक आवेदन होना चाहिए, बशर्ते वह 30 दिनों की अतिरिक्त अवधि के भीतर हो; इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 लागू नहीं होती है और 120 दिनों से अधिक के किसी भी विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता है - देखिए हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम हिमाचल टेक्नो इंजीनियर्स और अन्य (2010) 12 एससीसी 210, पैराग्राफ 5।"

65. उपरोक्त पैराग्राफ से यह स्पष्ट होता है कि उच्चतम न्यायालय ऐसे किसी मुद्दे पर विचार नहीं कर रहा था जिससे यह माना जाए कि अधिनियम 1992 (संभवतः 1996 के संदर्भ में) की धारा 34 के तहत एक याचिका के साथ विलंब क्षमा के लिए एक पृथक आवेदन होना अनिवार्य है। उसमें की गई टिप्पणियों को एक विवेकपूर्ण मार्ग के रूप में देखा जा सकता है जिसे कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 34 के तहत अपनी याचिका दायर करते समय अपना सकता है। हालांकि, केवल इसलिए कि विलंब क्षमा की मांग करने वाला कोई आवेदन अलग से नहीं किया गया है, स्वतः ही अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत याचिका को विचारणीय होने से नहीं रोकेगा। ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत दायर याचिका परिसीमा द्वारा बाधित हो और याचिकाकर्ता ने स्वयं उस याचिका में ही 'पर्याप्त कारण' के संबंध में कथन किए हों और विलंब क्षमा के लिए अलग से आवेदन किए बिना याचिका में ही प्रार्थना की हो। अतः, ऐसी परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि ऊपर पैराग्राफ 11 में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां यह संकेत देती हैं कि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत याचिका के साथ सभी परिस्थितियों में विलंब क्षमा के लिए एक पृथक आवेदन होना अनिवार्य है। उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्कों को अत्यंत तकनीकी मानता है और यह उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों को उनके संदर्भ से हटाकर देखने का एक प्रयास है।

66. स्पष्टता के प्रयोजन के लिए, उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय **शेष नाथ सिंह और अन्य बनाम बैद्यबाटी शेओराफुली कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड और अन्य; (2021) 7 एससीसी 313** पर गौर करना सार्थक होगा, जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा विलंब क्षमा के मुद्दे पर विचार

किया गया था और पैराग्राफ 59 से 63 में निम्नानुसार व्यवस्था दी गई थी:—

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



"59. किसी आवेदन या अपील को दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त 'पर्याप्त कारण' का अस्तित्व है। विलंब के लिए प्रस्तुत स्पष्टीकरण 'पर्याप्त कारण' की श्रेणी में आता है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। विलंब के लिए अपीलकर्ता/आवेदक द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार या अस्वीकार करने का कोई भी बंधा-बधाया फॉर्मूला नहीं हो सकता। प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार करना नियम होना चाहिए और इनकार करना एक अपवाद, विशेषकर तब जब चूक करने वाले पक्ष पर लापरवाही, निष्क्रियता या सद्भाव की कमी का आरोप न लगाया जा सके।

60. यह सच है कि परिसीमा अधिनियम द्वारा दूसरे पक्ष को एक मूल्यवान अधिकार प्राप्त हो सकता है, जिसे सामान्य रूप से विलंब क्षमा करके आसानी से विफल नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही, जब मामले में दांव ऊंचे हों, तो विषय के प्रति रूढ़िवादी और अति-तकनीकी दृष्टिकोण अपनाकर स्पष्टीकरण को खारिज नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे उस पक्ष को अपूरणीय क्षति और हानि हो सकती है जिसके विरुद्ध वाद समाप्त हो जाता है। न्यायालयों से यह अपेक्षित है कि वे संबंधित पक्षों के वैध अधिकारों और हितों के बीच एक संतुलन बनाए रखें।

61. परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 में किसी आवेदन का उल्लेख नहीं है। यह धारा न्यायालय को किसी आवेदन या अपील को स्वीकार करने में सक्षम बनाती है, यदि आवेदक या अपीलकर्ता, जैसा भी मामला हो, न्यायालय को संतुष्ट कर देता है कि उसके पास निर्धारित समय के भीतर आवेदन न करने और/या अपील न करने के लिए 'पर्याप्त कारण' था। यद्यपि, सामान्य व्यवहार यही है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत एक औपचारिक आवेदन दिया जाए, ताकि न्यायालय या न्यायाधिकरण निर्धारित समय के भीतर पहुंचने में अपीलकर्ता/आवेदक की अक्षमता के कारणों की पर्याप्तता पर विचार कर सके, फिर भी औपचारिक आवेदन की अनुपस्थिति में भी न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा विलंब को क्षमा करने के अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने पर कोई रोक नहीं है।

62. परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के सामान्य पठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त धारा के तहत राहत प्रदान किए जाने से पूर्व लिखित में आवेदन करना अनिवार्य नहीं है। यदि ऐसा आवेदन अनिवार्य होता, तो परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में स्पष्ट रूप से



ऐसा प्रावधान किया गया होता। तब धारा 5 का स्वरूप ऐसा होता कि न्यायालय किसी आवेदन या अपील को दायर करने के लिए परिसीमा द्वारा निर्धारित समय के बाद हुए विलंब को क्षमा कर सकता है, यदि अपीलकर्ता या आवेदक, जैसा भी मामला हो, द्वारा विलंब क्षमा के लिए दिए गए आवेदन पर विचार करने के उपरांत न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि अपीलकर्ता/आवेदक के पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण था। विकल्पतः, धारा 5 में एक परंतुक या स्पष्टीकरण जोड़ा गया होता, जिसमें अपीलकर्ता या आवेदक, जैसा भी मामला हो, के लिए विलंब क्षमा हेतु आवेदन करना अनिवार्य होता। हालांकि, न्यायालय हमेशा यह आग्रह कर सकता है कि विलंब का कारण दर्शाते हुए एक आवेदन या शपथ पत्र दायर किया जाए। कोई भी आवेदक या अपीलकर्ता, बिना आवेदन किए, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत अधिकार के रूप में विलंब क्षमा का दावा नहीं कर सकता।

63. जैसा कि ऊपर अवलोकन किया गया है, धारा 238-क परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को न्यायनिर्णायक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष आईबीसी के तहत होने वाली कार्यवाहियों पर "जहाँ तक संभव हो" लागू करती है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14(2), जो कुछ विशेष परिस्थितियों में परिसीमा की अवधि की गणना करते समय समय के अपवर्जन का प्रावधान करती है, निम्नानुसार है:

“14. बिना क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में सद्भावपूर्वक की गई कार्यवाही के समय का अपवर्जन।— (1) ***

(2) किसी भी आवेदन के लिए परिसीमा की अवधि की गणना करते समय, वह समय जिसके दौरान आवेदक उसी राहत के लिए उसी पक्ष के विरुद्ध किसी अन्य सिविल कार्यवाही को—चाहे वह प्रथम दृष्टया न्यायालय में हो या अपील या पुनरीक्षण में पूरी तत्परता के साथ चला रहा है, अपवर्जित कर दिया जाएगा, जहाँ ऐसी कार्यवाही सद्भावपूर्वक ऐसे न्यायालय में चलाई गई है, जो क्षेत्राधिकार की कमी या इसी तरह के अन्य कारणों से उसे स्वीकार करने में असमर्थ है।”

67. अतः, ऊपर उल्लिखित उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात्, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि केवल इस कारण से कि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आवेदन के साथ विलंब क्षमा की मांग करने वाला एक पृथक आवेदन संलग्न नहीं था, स्वतः ही

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(per se) अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आवेदन को तब तक विचारणीय होने से नहीं रोकेगा, जब तक कि इस बात पर विचार न कर लिया जाए कि क्या अभिवचनों में विलंब क्षमा के लिए या परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के लाभ के लिए कोई आधार बताया गया था अथवा इस आशय की कोई प्रार्थना की गई थी या नहीं।

68. जहाँ तक श्री दुबे द्वारा उद्धृत निर्णय का संबंध है, यह कहना पर्याप्त होगा कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा **राकेश कुमार जैन (उपरोक्त)** में दिया गया निर्णय एक भिन्न तथ्यात्मक स्थिति में है और वह सिविल कार्यवाहियों पर लागू होने वाली परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के संदर्भ में है, न कि 'मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996' के संदर्भ में। अतः, उक्त निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं हो सकता है और इसलिए यह प्रतिपक्षी की सहायता नहीं करता है। इसी कारण से, **फरीदाबाद गुड़गांव मिनरल्स (उपरोक्त)** का निर्णय भी प्रतिपक्षी की सहायता नहीं करता है। इसी प्रकार, उच्चतम न्यायालय द्वारा **करुणेश कुमार (उपरोक्त)** में दिया गया निर्णय 'अनुमोदन और अस्वीकरण' के सिद्धांत से संबंधित है, जो कि एक सिद्धांत के रूप में निर्विवाद है, परंतु 'अनुमोदन और अस्वीकरण' का उक्त सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है, अतः उक्त निर्णय भी प्रतिपक्षी की सहायता नहीं करता है।

69. अब वर्तमान मामले के तथ्यों पर उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करने पर यह स्पष्ट होता है कि वाणिज्यिक न्यायालय ने परिसीमा के मुद्दे पर विचार करते समय केवल संबंधित पक्षों के तर्कों और प्रस्तुत मुंसरिम रिपोर्ट का उल्लेख किया है। मुंसरिम की रिपोर्ट और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार, याचिका समय के भीतर थी। वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अपने दिनांक 20.06.2024 के आदेश में दर्ज किए गए निष्कर्ष से संबंधित प्रासंगिक अंश नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

"सुना व पत्रावली का अवलोकन किया। पत्रावली के अवलोकन के पश्चात विदित होता है कि याची/अपीलार्थी द्वारा माननीय उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 19.04.2024 व 01.05.2024 के अनुपालन में एवार्ड की 75% धनराशि न्यायालय में दिनांक 03.05.2024 को जमा की जा चुकी है। जहाँ तक विपक्षी सं०-4 द्वारा याचिका कालबाधित के संबंध में की गई आपत्ति का प्रश्न है, उक्त के सम्बन्ध में मुंसरिम आख्या के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मुंसरिम द्वारा माननीय उच्च न्यायालय में योजित रिट सी नं० - 8511/2023 में पारित आदेश दिनांकित 17.10.2023 के आधार पर कालबाधित न होने



की आख्या दी गई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त एवार्ड दिनांक 27.09.2023 को पारित किया गया है। उक्त एवार्ड पारित होने के 90 दिन पश्चात विस्तारित समयावधि 30 दिन अर्थात् कुल 120 दिन के भीतर याची अपीलार्थी द्वारा आर्बीट्रेशन वाद प्रस्तुत किया गया है एवं इस विलम्ब का समुचित कारण यह बताया गया है कि उसके द्वारा माननीय उच्च न्यायालय में याचिका रिट-सी नं०-8511/2023 योजित की गई थी, जिसे माननीय उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.10.2023 को निस्तारित किया गया है। जिसके आधार पर याचिका को समय सीमा में मानते हुए उक्त वाद दिनांक 17.01.2024 को आर्बीट्रेशन वाद के रूप में दर्ज किया जा चुका है एवं पत्रावली में आर्बीट्रेटर रिकॉर्ड भी तलब किया जा चुका है। ऐसी स्थिति में न्यायालय के मत में विपक्षी सं०-4 की ओर से प्रस्तुत प्रारंभिक आपति सी-9 पोषणीय न होने के कारण निरस्त किये जाने योग्य है।"

70. वाणिज्यिक न्यायालय का यह तर्क कि याचिका 90 दिनों के बाद लेकिन उसके 30 दिनों के भीतर, अर्थात् 120 दिनों के भीतर दायर की गई थी, और इस तरह के विलंब के लिए बताया गया आधार उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 8511/2023 का दायर किया जाना था जिसे 17.10.2023 को निस्तारित किया गया था, इसलिए याचिका को समय सीमा के भीतर मानकर दर्ज किया गया और मध्यस्थ से रिकॉर्ड मंगवा लिया गया, अतः ऐसी परिस्थितियों में प्रारंभिक आपतियां विचारणीय नहीं हैं—यह तर्क एक से अधिक कारणों से त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है: (i) सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि परिसीमा का मुद्दा एक क्षेत्राधिकार संबंधी मुद्दा था, जिस पर अत्यंत गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था, जो उक्त न्यायालय के उपर्युक्त उद्धृत तर्क में परिलक्षित नहीं होता है। केवल इस आधार पर कि मुंसरिम ने एक गलत रिपोर्ट दी थी, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि मुंसरिम की रिपोर्ट के कारण पक्षकार के मौलिक अधिकार को समाप्त माना जा सकता है या न्यायालय परिसीमा के मुद्दे पर निर्णय लेने का अपना क्षेत्राधिकार खो देता है। मुंसरिम की रिपोर्ट न्यायालय के आदेश के अधीन होती है न कि इसके विपरीत; (ii) इस न्यायालय को यह देखकर पीड़ा हो रही है कि वाणिज्यिक न्यायालय इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट-सी संख्या 8511/2023 में पारित दिनांक 17.10.2023 के आदेश को पढ़ने में भी विफल रहा। पिछले पैराग्राफों में पहले ही यह गौर किया जा चुका है कि खंडपीठ ने अपने दिनांक 17.10.2023 के आदेश में विलंब क्षमा से संबंधित कोई टिप्पणी नहीं की थी, और न ही ऐसा कोई संकेत या निर्देश दिया था कि जब भी प्रतिपक्षी द्वारा अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत आपतियां दायर की जाएंगी, उन्हें समय सीमा के भीतर माना जाएगा और गुण-दोष के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



आधार पर उन पर विचार किया जाएगा, जिससे याचिकाकर्ता (वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष विपक्षी दल) के परिसीमा का मुद्दा उठाने के अधिकार में कटौती हो; (iii) इसके अलावा, यदि मुंसरिम ने गलत रिपोर्ट दी थी और याचिकाकर्ता ने प्रथम उपलब्ध अवसर पर ही अपनी प्रारंभिक आपत्ति दर्ज कर उक्त तथ्य की ओर इशारा कर दिया था, तो यह वाणिज्यिक न्यायालय का कर्तव्य था कि वह उस विवाद पर अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करता और उसका निर्णय करता। हालांकि, परिसीमा से संबंधित विवाद में प्रवेश किए बिना, न्यायालय ने यह कहते हुए इस मुद्दे को टाल दिया कि मुंसरिम ने रिपोर्ट दे दी थी और मध्यस्थ से रिकॉर्ड मंगवा लिया गया था, इसलिए प्रारंभिक आपत्तियां विचारणीय नहीं थीं—यह तथ्य आक्षेपित आदेश को दोषपूर्ण/असुरक्षित बनाता है; (iv) ऐसा प्रतीत होता है कि वाणिज्यिक न्यायालय 'एंटरटेनेबिलिटी' और 'मेंटेनेबिलिटी' के बीच के अंतर से अवगत नहीं था। यह कहना एक बात है कि परिसीमा से संबंधित आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता, परंतु दी गई परिस्थितियों में ऐसा कोई कारण नहीं हो सकता कि केवल इसलिए परिसीमा के मुद्दे को विचारणीय न माना जाए क्योंकि मुंसरिम ने एक ऐसी रिपोर्ट दी थी जो उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की स्पष्ट गलत व्याख्या पर आधारित थी; (v) एक अन्य कारण जो वाणिज्यिक न्यायालय की कार्यप्रणाली पर प्रश्नचिह्न लगाता है, वह यह है कि यदि उसे परिसीमा के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति को खारिज ही करना था, तो कम से कम उससे यह अपेक्षित था कि वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कुछ ठोस कारण बताता, जिसके पीछे कोई कानूनी तर्क होता।

71. स्पष्ट रूप से, जैसा कि ऊपर पहले ही गौर किया जा चुका है, प्रतिपक्षी ने न तो विलंब क्षमा के लिए कोई प्रार्थना की थी और न ही विलंब क्षमा प्राप्त करने हेतु कोई पृथक आवेदन दिया था; इसके अतिरिक्त, परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ प्राप्त करने के लिए अभिवचनों में कोई आधार नहीं दिया गया था, और न ही यह दिखाने के लिए कोई अभिवचन दिया गया था कि प्रतिपक्षी किस प्रकार विलंब क्षमा या परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ पाने का हकदार था। इसके बावजूद, वाणिज्यिक न्यायालय ने परिसीमा संबंधी आपत्ति को विचारणीय न मानकर खारिज कर दिया, जो प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण है। यह आदेश बिना किसी ठोस कारण के पारित होने के दोष से ग्रस्त है और क्षेत्राधिकार का मनमाना प्रयोग है, अतः उक्त आदेश निरस्त किए जाने योग्य है।

72. उपरोक्त विस्तृत चर्चा के आलोक में, यह न्यायालय पाता है कि वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.06.2024 का आदेश प्रत्यक्षतः त्रुटिपूर्ण है और उसे बरकरार नहीं रखा जा सकता, अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



जहाँ तक कि उसने परिसीमा के बिंदु पर प्रारंभिक आपत्ति को खारिज किया है। उस सीमा तक, दिनांक 20.06.2024 के आदेश को निरस्त किया जाता है। वाणिज्यिक न्यायालय, पक्षकारों के स्पष्ट अभिवचनों को ध्यान में रखते हुए परिसीमा के मुद्दे पर नए सिरे से निर्णय करेगा और यह तय करेगा कि क्या यह विलंब क्षमा का मामला है या परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के अनुसार समय के अपवर्जन की मांग का मामला है। न्यायालय इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए एक सकारण और सुस्पष्ट आदेश पारित करेगा। उपर्युक्त परिसीमा के मुद्दे को यथासंभव शीघ्र, अधिमानतः इस आदेश की प्रति संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर, तय करने का प्रयास किया जाएगा।

73. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने अभिवचनों की सत्यता पर विचार नहीं किया है और न ही इस बारे में कोई टिप्पणी की है कि विलंब क्षमा या समय के अपवर्जन का मामला बनता है या नहीं; इसका निर्णय निश्चित रूप से वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा, ऊपर दी गई टिप्पणियों के आलोक में और कानून के अनुसार किया जाएगा। उपरोक्तानुसार पारित किया जाने वाला नया आदेश, दिनांक 17.01.2024 के आदेश का भाग्य निर्धारित करेगा। तदनुसार, याचिका संख्या 3886/2024 को उपरोक्त शर्तों के साथ आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

रिट याचिका संख्या 5145 वर्ष 2024 के संबंध में चर्चा

74. संबद्ध याचिका संख्या 5145/2024 में विवाद को समझने के लिए, प्रतिपक्षी (जो रिट याचिका संख्या 5145 का याचिकाकर्ता है) द्वारा मांगी गई राहतों पर ध्यान देना उचित होगा, जो कि निम्नानुसार हैं:-

"(i) विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-2, लखनऊ द्वारा 'पैराडाइम एंटरप्राइजेज बनाम भारत संघ, सचिव सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम के माध्यम से' (आर्बिट्रेशन केस संख्या 3/2024) में आवेदन संख्या सी06 पर पारित आदेश दिनांक 27.09.2024 को उस सीमा तक निरस्त करने के लिए उचित आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा पंचाट राशि का 25% प्रतिभूति के रूप में जमा करने का निर्देश दिया गया है।

(ii) विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-2, लखनऊ द्वारा 'पैराडाइम एंटरप्राइजेज बनाम भारत संघ, सचिव सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम के माध्यम से' (आर्बिट्रेशन केस संख्या 3/2024) में आवेदन संख्या सी-30 (धनराशि अवमुक्त करने हेतु आवेदन) और आवेदन

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



संख्या सी-53 (पूरक शपथ पत्र) पर पारित आदेश दिनांक 27.09.2024 को उस सीमा तक निरस्त करने के लिए उचित आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा पंचाट राशि (awarded amount) का 25% प्रतिभूति के रूप में जमा करने का निर्देश दिया गया है।

(iii) विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय को यह उचित आदेश या निर्देश जारी करना कि वह विपक्षी संख्या-3 को वह धनराशि वापस करने का आवश्यक निर्देश दे, जो दिनांक 19.07.2024 के आदेश के अनुपालन में ली गई है।

(iv) विद्वान वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-2, लखनऊ को यह उचित आदेश या निर्देश जारी करना कि वह विपक्षी संख्या-3 द्वारा 'पैराडाइम एंटरप्राइजेज बनाम भारत संघ, सचिव सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम के माध्यम से' (मध्यस्थता वाद संख्या 3/2024) में आवेदन संख्या सी-30 पर पारित आदेश दिनांक 19.07.2024 के अनुपालन में जमा किए गए क्षतिपूर्ति बंधपत्र को भुनाने का निर्देश दे, यदि उक्त धनराशि आदेश दिनांक 19.07.2024 के अनुपालन में विपक्षी संख्या-3 को अवमुक्त कर दी गई है, और उसे सावधि जमा में जमा करना सुनिश्चित करे तथा 'पैराडाइम एंटरप्राइजेज बनाम भारत संघ' (मध्यस्थता वाद संख्या 3/2024) के अंतिम न्यायनिर्णयन के पश्चात ही उसे अवमुक्त करना सुनिश्चित करे।"

75. श्री दुबे द्वारा प्रस्तुत दलीलों का मुख्य आधार यह है कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने रिट-सी संख्या 3594/2024 में पारित अपने आदेश दिनांक 19.04.2024 में यह संज्ञान लिया था कि सुविधा परिषद द्वारा पारित पंचाट कानून की दृष्टि में कोई पंचाट नहीं था। एक बार जब उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा ऐसी टिप्पणी कर दी गई थी, और वही पंचाट अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाही में विचाराधीन था, तो ऐसी परिस्थिति में वाणिज्यिक न्यायालय के लिए यह उचित और न्यायसंगत नहीं था कि वह याचिकाकर्ता, अर्थात् मेसर्स जीनबियो हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में जमा राशि को अवमुक्त करता।

76. यदि इस दलील पर विचार किया जाए, तो रिकॉर्ड से यह स्पष्ट होगा कि पूर्वोक्त आदेश में खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियाँ, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिपक्षी द्वारा अपनी याचिका में दी गई दलीलों के संदर्भ में थीं। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रति रिट याचिका संख्या 5145/2024 के साथ अनुबंध संख्या 11 के रूप में रिकॉर्ड पर है, जिससे यह पता चलता है कि पैराग्राफ 9 के बाद से न्यायालय ने प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार किया



है। न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख उक्त आदेश के पैराग्राफ 18 और 23 से 25 में किया गया है और उसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"18. हालांकि, इस न्यायालय का यह मत है कि याचिकाकर्ता को एक साथ उन्हीं आधारों पर बहस करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जिन्हें उसने अधिनियम 1996 की धारा 34/एमएसएमईडी अधिनियम, 2020 की धारा 19 के तहत दायर अपनी अपील में उठाया है और साथ ही इस न्यायालय के समक्ष पंचाट को चुनौती दी है।

23. रिकॉर्ड पर उपलब्ध अभिवचनों का अवलोकन करने और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, हम पाते हैं कि रिट याचिका की प्रार्थना संख्या 2 और 3 विफल होती हैं और इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 8511/2023 में भी समान प्रार्थनाएँ की गई थीं, जिसे इस न्यायालय द्वारा 17.12.2023 को खारिज कर दिया गया था।

24. इस याचिका की प्रार्थना संख्या 1 और प्रार्थना संख्या 4 के संबंध में, जो उप-जिलाधिकारी, लखनऊ द्वारा जारी वसूली नोटिस दिनांक 16.04.2024 और तहसीलदार, लखनऊ द्वारा जारी वसूली नोटिस दिनांक 22.03.2024 को रद्द करने तथा कंपनी के बैंक खाते को अवमुक्त करने से संबंधित है, निजी प्रतिपक्षी द्वारा वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष धारा 19 के तहत याचिकाकर्ता की अपील अभी तक नहीं उठाई गई है।

25. वाणिज्यिक न्यायालय पंचाट की 75% राशि के पूर्व-जमा की शर्त पर गौर करेगा और उचित आदेश पारित करेगा। इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपने मुवक्किल से प्राप्त निर्देशों के आधार पर कहा है कि वह वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष अपील में पंचाट राशि का 75% जमा करने के लिए तैयार है। यह आश्वासन न्यायालय को मौखिक रूप से दिया गया है। हालांकि, यदि याचिकाकर्ता एक सप्ताह के भीतर पंचाट राशि के 75% पूर्व-जमा की शर्त का पालन करता है, और वाणिज्यिक न्यायालय तिरुपति स्टील्स (उपरोक्त) में तय कानून के अनुसार अपील स्वीकार कर लेता है, तो जिला प्रशासन इस याचिका में आक्षेपित वसूली कार्यवाही को आगे नहीं बढ़ाएगा।"



77. खंडपीठ के उक्त आदेश से यह स्पष्ट होता है कि उसने सुविधा परिषद द्वारा पारित पंचाट के संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं की थी। निर्णय के पैराग्राफ-17 में दी गई जिस टिप्पणी पर प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, उसे संदर्भ से हटकर प्रस्तुत किया जा रहा है। अतः, यह न्यायालय इस तर्क को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है कि खंडपीठ ने ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज किया था या यह टिप्पणी की थी कि सुविधा परिषद द्वारा पारित पंचाट कानून की दृष्टि में कोई पंचाट नहीं था और वह वाणिज्यिक न्यायालय पर बाध्यकारी था।

78. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त पंचाट अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाही में वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है, जो कि वह उचित मंच है जहाँ पंचाट की वैधता का परीक्षण अधिनियम 1996 की धारा 34 में वर्णित आधारों पर किया जाएगा और उक्त न्यायालय कानून के अनुसार इसका निपटारा करेगा।

79. श्री दुबे का अन्य तर्क कि वाणिज्यिक न्यायालय ने इस संबंध में कोई ठोस कारण नहीं दिया है कि उक्त राशि याचिकाकर्ता के पक्ष में क्यों जारी की जानी चाहिए, यदि अधिनियम 2006 की धारा 19 के संदर्भ में इसका परीक्षण किया जाए, तो यह स्पष्ट होगा कि न्यायालय के पास पक्षकारों के बीच साम्य को संतुलित करने का एक विधायी अधिदेश है। अधिनियम 2006 की धारा 19 इस प्रकार है:-

"19. डिक्री, पंचाट या आदेश को निरस्त करने के लिए आवेदन— परिषद द्वारा स्वयं या परिषद द्वारा संदर्भित वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले किसी संस्थान या केंद्र द्वारा पारित किसी भी डिक्री, पंचाट या अन्य आदेश को निरस्त करने के लिए किसी भी न्यायालय द्वारा तब तक कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा, जब तक कि अपीलकर्ता (जो आपूर्तिकर्ता न हो) ने न्यायालय द्वारा निर्देशित तरीके से डिक्री, पंचाट या आदेश के अनुसार 75% राशि जमा न कर दी हो:

परंतु यह कि डिक्री, पंचाट या आदेश को निरस्त करने के आवेदन के लंबित रहने के दौरान, न्यायालय यह आदेश देगा कि जमा की गई राशि का उतना प्रतिशत आपूर्तिकर्ता (supplier) को भुगतान किया जाए, जितना वह मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित समझे, और यह भुगतान ऐसी शर्तों के अधीन होगा जो न्यायालय अधिरोपित करना आवश्यक समझे।"



80. उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट है कि यदि अधिनियम 2006 के तहत पारित किसी पंचाट को चुनौती दी जाती है, तो उसके साथ डिफ्री की राशि का 75% पूर्व-जमा करना अनिवार्य है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **तिरुपति स्टील बनाम सुभ इंडस्ट्रियल कॉम्पोनेंट एवं अन्य; (2022) 7 एससीसी 429** के मामले में भी निर्धारित किया गया है। धारा 19 के साथ संलग्न परंतुक यह भी स्पष्ट करता है कि न्यायालय आपूर्तिकर्ता के पक्ष में उतनी राशि अवमुक्त कर सकता है जितनी वह उचित समझे और ऐसी अवमुक्ति उन शर्तों के अधीन हो सकती है जो न्यायालय आवश्यक समझे।

81. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **इंडिया ग्लाइकोल्स लिमिटेड बनाम एमएसईएफसी, तेलंगाना; (2025) 5 एससीसी 780** के मामले में अधिनियम 2006 की धारा 19 पर विचार किया था और इसके पैराग्राफ 9 से 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"9. धारा 19 के निबंधनों के अनुसार, सुविधा परिषद के पंचाट को निरस्त करने के किसी भी आवेदन को किसी भी न्यायालय द्वारा तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता, जब तक कि अपीलकर्ता ने पंचाट की राशि का पचहत्तर प्रतिशत जमा न कर दिया हो। धारा 18(4) के प्रावधानों के दृष्टिगत, जहाँ सुविधा परिषद किसी विवाद पर मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ती है, वहाँ 1996 के अधिनियम के प्रावधान विवाद पर उसी प्रकार लागू होंगे मानो वह उस अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) के तहत मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में हो। अतः, 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत प्रदान किया गया उपचार सुविधा परिषद के पंचाट पर लागू होगा।

10. हालांकि, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 19 द्वारा एक अतिरिक्त शर्त अधिरोपित की गई है कि पंचाट को निरस्त करने का आवेदन तभी स्वीकार किया जा सकता है जब अपीलकर्ता पंचाट की राशि का पचहत्तर प्रतिशत परिषद के पास जमा कर दे। धारा 19 को उन उद्यमों के लिए सुरक्षा के एक उपाय के रूप में शामिल किया गया है जिनके लिए संसद द्वारा एमएसएमईडी अधिनियम में विशेष प्रावधान किया गया है। धारा 18(4) के प्रावधानों के आलोक में, अपीलकर्ता के पास पंचाट को चुनौती देने के लिए 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत उपचार उपलब्ध था, जिसका अनुसरण करने में वह विफल रहा।"



11. इस न्यायालय के निर्णय गुजरात स्टेट सिविल सप्लाईज कॉर्पोरेशन [गुजरात स्टेट सिविल सप्लाईज कॉर्पोरेशन लि. बनाम महाकाली फूड्स (प्रा.) लि., (2023) 6 एससीसी 401 : (2023) 3 एससीसी (सिविल) 7] में, न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने अपने निष्कर्ष निकालते हुए यह टिप्पणी की है कि: (एससीसी पृ. 433, पैरा 52)

“52. ... 52.4. एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18(3) के तहत मध्यस्थ/मध्यस्थता अधिकरण के रूप में कार्य करने वाली सुविधा परिषद/संस्थान/केंद्र के समक्ष कार्यवाही, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 द्वारा शासित होगी।”

12. अपीलकर्ता धारा 34 के तहत उपचार का लाभ उठाने में विफल रहा। यदि वह ऐसा करता, तो उसे डिफ्री की राशि का पचहत्तर प्रतिशत जमा करना आवश्यक होता। कानून के तहत इस दायित्व से बचने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अधिकार क्षेत्र का सहारा लिया गया। यह स्पष्ट रूप से अनुमति योग्य नहीं था।”

82. इसी शक्ति के प्रयोग में, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन पर विचार करते हुए, वाणिज्यिक न्यायालय ने उसमें दिए गए कारणों का संज्ञान लिया है और याचिकाकर्ता के पक्ष में जमा राशि को अवमुक्त करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है, जो इस शर्त के अधीन है कि याचिकाकर्ता एक वचनपत्र दाखिल करेगा कि यदि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई प्रतिकूल आदेश पारित किया जाता है, तो याचिकाकर्ता उक्त राशि को 6% वार्षिक ब्याज के साथ न्यायालय को वापस करने के लिए बाध्य होगा।

83. दिनांक 27.09.2024 के आदेश के परिशीलन से यह पता चलता है कि वाणिज्यिक न्यायालय ने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत संबंधित दलीलों का संज्ञान लिया है, धनराशि अवमुक्त करने के आवेदन में किए गए कथनों पर विचार किया है और धारा 19 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, कारण दर्ज करके धनराशि अवमुक्त की है। वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र के इस प्रयोग के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह कानून या अधिकार क्षेत्र की किसी त्रुटि से ग्रस्त है, और न ही इसका प्रयोग किसी ऐसी अवैधता या तात्त्विक अनियमितता के साथ किया गया है जो इस न्यायालय को उपरोक्त आधार पर उक्त आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित करे।

84. यह ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा कि वाणिज्यिक न्यायालय ने पहले भी राशि अवमुक्त करने का आदेश दिया था और उक्त आदेश को प्रतिपक्षी द्वारा इस न्यायालय की एक समन्वय

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



पीठ के समक्ष रिट याचिका संख्या 3611/2024 दायर करके चुनौती दी गई थी। समन्वय पीठ ने अपने आदेश में यह संज्ञान लिया था कि आक्षेपित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता क्योंकि उसमें कारणों का उल्लेख नहीं था। न्यायालय ने उस आदेश को निरस्त कर दिया था और वाणिज्यिक न्यायालय संख्या-2, लखनऊ को अवमुक्ति आवेदन पर नए सिरे से आदेश पारित करने का निर्देश दिया था।

85. इसके पश्चात, वाणिज्यिक न्यायालय ने यह पाया कि आपूर्तिकर्ता, अर्थात् वर्तमान याचिकाकर्ता, एक लघु उद्योग था और यदि राशि अवमुक्त नहीं की गई तो इससे याचिकाकर्ता को भारी कठिनाई होगी; और कारणों को दर्ज करते हुए, न्यायालय ने राशि अवमुक्त कर दी। प्रतिपक्षी के अधिकारों की रक्षा के लिए, न्यायालय ने यह भी निर्देशित किया है कि यदि अधिनियम 1996 की धारा 34 के तहत कार्यवाही में प्रतिपक्षी के पक्ष में और याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई आदेश पारित होता है, तो याचिकाकर्ता उक्त अवमुक्त राशि को 6% वार्षिक ब्याज के साथ वापस करेगा। इस प्रकार, विवादित पक्षकारों के अधिकारों को सुरक्षित किया गया है और धारा 19 के साथ संलग्न परंतुक के अधिदेश को भी प्राप्त कर लिया गया है। अतः, यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त आदेश अधिकारिता की किसी त्रुटि से ग्रस्त है या वह बिना कारण या तर्कहीन है।

86. अब यह निर्विवाद रूप से सुस्थापित हो चुका है कि धन की डिक्री पर रोक नहीं लगाई जाती है। यदि कोई स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण निर्णय/पंचाट/डिक्री न्यायालय के समक्ष आती है और उसे रिकॉर्ड के प्रत्यक्ष साक्ष्यों के आधार पर घोर धोखाधड़ी के आधार पर चुनौती दी जाती है, तो ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय धन की डिक्री पर रोक लगा सकता है। हालांकि, एक सामान्य नियम के रूप में धन की डिक्री पर रोक नहीं लगाई जाती है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय के पास डिक्री की राशि को सुरक्षित करने का अधिकार क्षेत्र है और वह डिक्री की राशि के ऐसे हिस्से को अवमुक्त भी कर सकता है जिसे न्यायालय मामले के तथ्यों के अनुसार उचित और न्यायसंगत समझे। [देखें लाइफस्टाइल इक्विटीज सी.वी. बनाम अमेज़न टेक्नोलॉजीज, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 2153]। अतः, यह तर्क सफलतापूर्वक नहीं दिया जा सकता कि धन की डिक्री पर सामान्य प्रक्रिया के रूप में अनिवार्यतः रोक लगाई जानी चाहिए।

87. विद्वान अधिवक्ता, प्रतिपक्षी द्वारा उठाए गए आधारों का परीक्षण धारा 34 के तहत कार्यवाही में वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष किया जाना होगा। धारा 34 के तहत उक्त कार्यवाही के



परिणाम के अधीन ही, वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.09.2024 प्रभावी होगा।

88. यह भी ध्यान दिया जाना है कि वाणिज्यिक न्यायालय ने प्रतिपक्षी को डिफ्री की शेष 25% राशि के लिए मूल्यवान प्रतिभूति प्रस्तुत करने का निर्देश दिया है; डिफ्री की राशि को सुरक्षित करने के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में जारी किए गए इस निर्देश को भी दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

89. प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का संपूर्ण सार यह है कि सुविधा परिषद द्वारा पारित पंचाट उनकी अनुपस्थिति में और उचित अवसर प्रदान किए बिना पारित किया गया था। यह एक ऐसा विषय है जिसे वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड के आधार पर देखा जाना है। यह घोर धोखाधड़ी का मामला नहीं है जो रिकॉर्ड से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हो और ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिपक्षी को शेष 25% राशि के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने का निर्देश देना—जिसके अधीन प्रतिपक्षी के विरुद्ध वसूली की कार्यवाही स्थगित रहेगी—किसी भी त्रुटि से ग्रस्त है; बल्कि यह वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अपनाई गई एक उचित कार्ययोजना है और इसमें कोई दोष नहीं पाया जा सकता। इसके अतिरिक्त, प्रतिपक्षी द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में अवमुक्त की गई धनराशि को वापस करने के लिए मांगा गया निर्देश पारित नहीं किया जा सकता। तदनुसार, यह न्यायालय प्रतिपक्षी द्वारा दायर याचिका में कोई गुण नहीं पाता है।

निष्कर्ष

90. उपरोक्त विस्तृत कारणों के आधार पर, याचिका संख्या 3886/2024, मेसर्स जेनेबियो हेल्थकेयर प्राइवेट लिमिटेड द्वारा निदेशक अरुण कुमार श्रीवास्तव बनाम पैराडाइम एंटरप्राइजेज द्वारा निदेशक रीतिका पांडे एवं अन्य को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है, जबकि याचिका संख्या 5145/2024, पैराडाइम एंटरप्राइजेज बनाम माइक्रो, स्मॉल एवं अन्य को खारिज किया जाता है। तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह)

21 जनवरी, 2026

एएनके

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।